# शहरयार

स्वदेश भारती



कलकत्ता महानगर :

एक ओर सांस्कृतिक गतिविधियों का संगम तो दूसरी ओर राजनैतिक, प्रगतिशील-नवचेतना, विचार-प्रवाहों का अद्भुत सामंजस्य। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक संत्रास के बीच जीवन के बिखरते हुए मूल्यों का 'केयांस'।

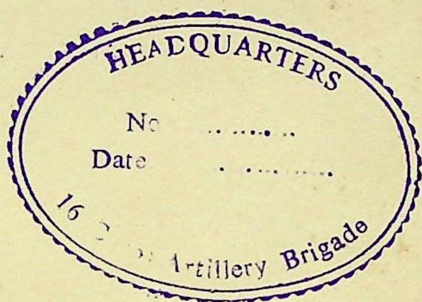
ऐसे माहौल में सैकड़ों, हजारों पढ़ी-लिखी बेकार लड़कियाँ, अपने भूखे, बीमार परिवार के जीवन-अस्तित्व के रक्षार्थ देह-व्यापार के लिए विवश हो जाती हैं।

ऐसी ही एक लड़की काजल थी जो गरीबी, भूख, बीमारी के बीच संघर्ष करती घिनौनी स्थितियों के बीच से गुजरती हुई धन, ऐश्वर्य, सुख सुविधाओं के बीच आ खड़ी होती है। पिता का अचानक घर छोड़कर संन्यासी बन जाना, माँ की असाध्य बीमारी से असामयिक मृत्यु तथा छोटी बहन की जिम्मेदारी ने उसे जीवन में सर्वदा अशान्ति दी। और अन्त में—वह अपाहिज जीवन की विभीषिका के बीच सघर्ष करते हुए इस क्रूर दुनिया में जिन्दा नहीं रह पाती।

'शहरयार' यानी नगर-बन्धु, कथानायक आधुनिक शहर कलकत्ता की आर्थिक विसंगतियों, राजनैतिक चेतना के बीच देह-शोषण के नये-नये तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। प्रकारान्तर से फ्लैश बैक तथा 'स्ट्रीम आफ कान्शसनेस' की नित नूतन शैली में कहानी की पर्तें अपने आप खुलती जाती हैं।

'शहरयार' स्वदेश भारती का तीसरा उपन्यास है। उपन्यास एक बार प्रारम्भ करने पर बिना समाप्त किए रखा नहीं जा सकता। युवा उपन्यासकार की नयी शैली, घटनाक्रमों को मानवीय सम्वेदना के धरातल पर मौलिकता के साथ प्रस्तुत करने की तकनीक उसे हिन्दी के अन्य आधुनिक उपन्यासकारों से बहुत आगे ले जाकर अगली पंक्ति में खड़ा कर देती है।

निश्चित ही यह उपन्याम साहित्यिक पाठकों को अत्यधिक रुचिकर लगेगा।

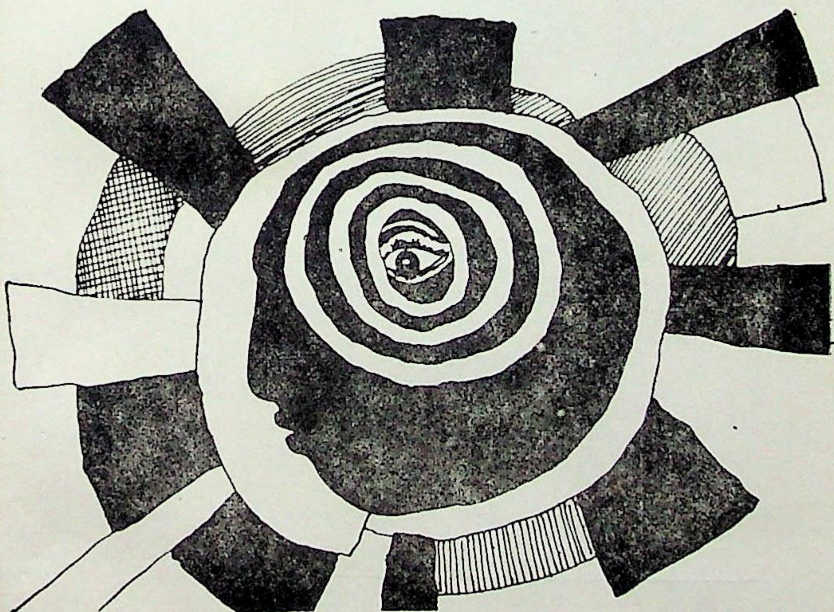

HEADQUARTERS
No
Date
16 ... Artillery Brigade



वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

# शहरयार

स्वदेश भारती



वाणी प्रकाशन
4697/5, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-2
द्वारा प्रकाशित

प्रथम सस्करण 1985
स्वत्व : लेखकाधीन : **मूल्य 35.00 रुपये**
आवरण : गोविन्द प्रसाद

सीमा प्रिंटिंग प्रेस
मोहन पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

---

SHAHARYAR (Novel)
by Swadesh Bharti

शहरयार

महानगर के भीड़-भरे फुटपाथ पर अँधेरे और उजाले के बीच 'विदूषक' नाचता है। गाता कभी आहिस्ता, कभी ऊँचे स्वर में—

"मेरे सपने छीन जाता मुझे कोई तो बचाओ।
मेरा हृदय लिए जाता मुझे कोई तो बचाओ।
आकाश लिए जाता भला कोई तो बचाओ।
संत्रास दिए जाता भाई कोई तो बचाओ।
भाई कोई तो बचाओ···।"

मैंने कई बार कई रूपों, रंगों, कई तेवरों में उसे राजपथ पर बदहवास नाचते-गाते देखा है। कभी 'लाट साहब' की कोठी, 'राजभवन' के बाहर। कभी 'एस्प्लेनेड', 'बड़ा बाजार', 'धर्मतल्ला'। कभी 'चौरंगी', 'विक्टोरिया' के सामने या हावड़ा पुल पर। हाथ में 'इकतारा' और होठों पर अस्तित्व गीत। पाँवों में घुँघरू। कभी सिर पर गांधी टोपी, कभी लाल, पीली पगड़ी। कभी फुटपाथ पर नाचते-नाचते बीच सड़क पर आ जाता है। कभी शहीद मीनार से चिल्लाता है, या ब्रिग्रेड परेड की जनसभा में गाता है। कभी शहर का 'ट्रैफिक' जाम कर देता। पुलिस डंडे, अश्रुगैस लेकर दौड़ पड़ती। शान्ति रक्षार्थ अशान्ति बढ़ जाती। संघर्ष शुरू हो जाता। एक ओर से लाठी चार्ज, अश्रुगैस, गोलियाँ और दूसरी ओर से ईंट-पत्थर, सोडा वाटर की बोतलें, बम। दंगों-फसादों, लूट, आग, रक्तपात के बीच विदूषक नाचता मदमत्त। सभी का यार बन। दोस्त बन। सखा बन। चौपाल हो या शहर का होटल 'बार'। शवयात्रा हो या शोभायात्रा। विदूषक गाता-नाचता। नाचना और गाना ही उसका जीवन है। कभी गाता चौपाल गीत—

"भुखिया के मारे बिरहा विसरिगा
भूलि गई कजरी कबीर

देखि के गोरी की मोहिनी सुरतिया
अब उठे न करेजवा में पीर।"

कभी गाता हिप्पियों, बीटलों का लारे लप्पा, जिप्सी-गीत—इल्डारे डाडू, मैं नहीं, मय, बस तू ही हू। कभी गाता जीवन-संघर्ष गीत। कभी गाता महानगर के विपयर्य का गीत। कभी गाता मनुष्य के विघटन का गीत। सैंतीस वर्षों से वह नाच रहा। गा रहा फुटपाथ बदलता। अँधेरे के बीच उजाला माँगता। और गाता अपना चिर-परिचित गीत—

"बचाओ बचाओ भाई कोई तो बचाओ।
मेरे सपने छीन जाता मुझे कोई तो बचाओ।
मेरा हृदय लिए जाता मुझे कोई तो बचाओ।
आकाश लिए जाता मुझे कोई तो बचाओ।
संत्रास दिए जाता भला कोई तो बचाओ।"

जब भी वह गाता है, झूम उठता है। लोग तालियाँ बजाते हैं। वह सबका अभिनन्दन स्वीकार करता है। हाथ जोड़, नतमस्तक हो। कभी 'लेनिन' कभी 'गांधी' की प्रतिमा के नीचे, कभी उत्तर, कभी दक्षिण, कभी पूरब, कभी पश्चिम, नगर सीमान्त के आरपार विदूषक नाचता है। चकाचौंध रोशनी में अथवा अँधेरे बियाबान में, भटकते आदमियों के जंगल में जहाँ नब्वे लाख नागरिक जलती मोमबत्ती के उजाले में देखते हैं अपने बच्चों का भविष्य। विदूषक नाचता है। अँधेरी 'लालबत्ती' गलियों में जब अस्सी हजार मायावर औरतें हाथ में पेट लिए भागती हैं, ट्रैफिक की तरह, जनरव, कोलाहल अथवा गहरे सन्नाटे के बीच। विदूषक गाता है। महानगर के आरपार झोपड़पट्टी के सामने नंगे क्षुधार्ध बच्चे उसके गीत याद कर गाते, पेट बजाते भीख माँगते—ताक धिना धिन तिन तिन धिन ताक धिना धिन—

"मेरे सपने छीन जाता मुझे कोई तो बचाओ।
मेरा हृदय लिए जाता मुझे कोई तो बचाओ।
आकाश लिए जाता भला कोई तो बचाओ।
संत्रास दिए जाता भला कोई तो बचाओ।"

एक दिन 'विदूषक' हावड़ा पुल पर खड़े होकर यह किस्सा गाकर सुना रहा था—

हावड़ा पुल बोला एक दिन 'हुगली' से—

"तुम क्यों प्रतिक्षण बहती हो ? यदि तुम न होतीं तो मैं इस तरह दो टाँगों पर सदियों से न खड़ा रहता।"

हुगली रुकी, सहज भाव से, बंगाल की सलज्ज नववधू-सी बोली—

"सुनो बन्धु। मेरे अस्तित्व के कारण ही तुम सिर ऊँचा किए खड़े हो।"

हावड़ा पुल चुप हो गया। उसकी चुप्पी देखकर उधर से जाते हुए 'बड़ा बाजार' के व्यापारी ने पूछा—

"भाई मेरे ! तुम इस तरह खामोश सदियों से खड़े हो। अब सुस्ता भी लो। आराम कर लो। किसी हरियाली जगह चले जाओ। कुछ स्वास्थ्य लाभ करो। मेरी भी किस्मत खुले। तुम्हारी जगह नया पुल बने और कन्ट्रैक्ट मुझे मिले।"

हावड़ा पुल मुस्करा कर बोला—

"तुम्हारी धोती इतनी सफेद और ढीली है। पेट तरबूज की तरह फूल गया है। सच भाई, पैसे का लोभ कितना बुरा है !"

व्यापारी ने कहा—"क्या बताएँ भाया, महँगाई बहुत बढ़ गई। न युद्ध होवे, न अकाल पड़े। कुछ कोनी भावे। चोखा मुनाफा कोनी होवे। 'शेयर बाजार' के घटते-बढ़ते भावों पर नाचती हैं उँगलियाँ नींद में भी। वोट और नेता की चिन्ता दिमाग से कोनी जावै। नेता को जैसे 'कुर्सी' दिन-रात खाती, मुझे मुनाफा के बिना कोई बात नहीं भाती।"

हावड़ा पुल चुप हो गया। उसकी गहरी चुप्पी देख उधर से गुजरती हुई कोठेवाली ने होठों पर सायास मुस्कान लिए पूछा—"क्यों भाई ! तुम चुप क्यों हो गए ? कुछ बोलो तो सही।"

हावड़ा पुल आहत स्वर में बोला—"सबका अपना-अपना तीर है, अपना-अपना निशाना। तुम्हारे सिर पर यह चोट कैसी ?"

कोठेवाली ने कहा—" 'शहीद मीनार' से एक युवा नेता भाषण दे रहा था। उसकी बातें सुनकर मैंने मुस्करा दिया। उसके चमचों ने मुझ पर

प्रहार किया और मेरी यह हालत बना दी। हालाँकि नेता और मैं एक ही तराजू के दो पलड़े हैं। वह सफेद कपड़े पहन दिन के उजाले में नंगा होता है, और मैं रात के अँधेरे में कपड़े उतारकर नंगी होती हूँ। तुमने पुल बनकर बहुत कुछ सह लिया, महानगर का उत्थान-पतन देख लिया। नेता बन जाओ। तब जड़ बने रहने पर भी सुखी रहोगे। यहाँ तक कि तुम्हारे नंगा होने पर लोग तालियाँ बजाएँगे, अभिनन्दन करेंगे। बोलो, बनोगे न नेता ?''

'हावड़ा पुल' कुछ बोला नहीं। उदास खड़ा रहा। मेरी तरह वह भी मूक स्वर में गा रहा है महानगर का अस्तित्व गीत—-

''मेरे सपने छीन जाता मुझे कोई तो बचाओ।
आकाश लिए जाता भला कोई तो बचाओ।
संत्रास दिए जाता भला कोई तो बचाओ।''

'विदूषक' गाने लगा। भीड़ तालियाँ बजाने लगी। फिर गाने लगी। विदूषक रोने लगा। उसका रोना देखकर भीड़ हँसने लगी और एक-दूसरे का मुँह ताकती हुई छँटने लगी। शहर का एक आवारा कुत्ता अचानक पूँछ हिलाता आया और विदूषक का लबादा मुँह से खींचने लगा। आज नव वर्ष की सन्ध्या पर पार्क-स्ट्रीट के जगमगाते फुटपाथ पर वह नाच रहा बदहवास। गा रहा। मैं उसके बारे में सोचता हुआ 'बार' में अकेला बैठा हूँ।

''भला कौन उसके सपने छीन रहा है ?
भला कौन उसका हृदय लिए जा रहा है ?
भला कौन उसका आकाश खण्ड-खण्ड किए जा रहा है ?
भला कौन उसे संत्रास दिए जा रहा है सैंतीस वर्षों से ?
............

वह तीर की तरह आकर मेज पर गड़ गया।

"हलो मनीश ! तुम यहाँ अकेले बैठे हो। यार इस शहर में कब से मैं तुम्हें ही खोज रहा हूँ। मेरे पास तुम्हारा पता तो था नहीं, खोजता भी कैसे ? मुझे खुशी है कि आज अचानक ही तुम यहाँ मिल गए। यहाँ रोज आते हो या गाहे-बगाहे ? आज तो 'न्यू इयर्स इव' है। तुम्हें नये साल की शुभकामनाएँ।"

उसके बारे में मैं सोचने लगा। दिमाग पर काफी जोर देने के बाद भी कुछ याद नहीं आया। आखिर ये महापुरुष हैं कौन ? मेरा इनसे क्या नाता है भला ? क्या परिचय है ?

"मैं यहाँ बैठ सकता हूँ ? यानी तुम्हें कोई एतराज न हो ?" मेरे बोलने के पहले ही वह सामने कुर्सी पर बैठ गया। मुझे स्पष्ट लग रहा था कि मेरा उसके साथ कोई परिचय नहीं, कोई भी पुराना या नया सम्बन्ध नहीं। फिर भी दिमाग पर जोर डालकर सोचता रहा कि शायद मेरे सम्बन्धियों में से किसी दूरदराज के रिश्ते में कोई हो।

"लो सिगरेट पियो।" उसने सिगरेट की पैकेट मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा।

मैं असमंजस में पड़ गया। उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा।

"सिगरेट पीते हो न ? लो।" उसने दोबारा आग्रह किया। फिर हँसते हुए बोला—"जब दारू पीते हो तो सिगरेट से भला कैसा परहेज ? लो न एक। इम्पोर्टेड है। इसकी गंध और स्वाद दोनों लाजवाब हैं। कल 'पोर्ट' से लाया हूँ। वहाँ मेरा दोस्त काम करता है।"

"नहीं। धन्यवाद !" मुझे लग रहा था कि मेरे मुँह से यह शब्द अनायास ही निकल गए थे।

उसने मेरे चेहरे को अविश्वास और अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। उसके होठों पर मन्द मुस्कान खिंच गई। सिगरेट की पैकेट खोलकर उसमें से एक सिगरेट निकाल कर होठों के बीच दबा लिया।

"जरा अपनी माचिस देना।" कहकर मेरे माचिस देने के पहले ही उसने मेज पर सामने पड़ी माचिस उठा ली।

मैं होटल की खिड़की से बाहर देखने लगा। आज 'न्यू इयर्स इव' है।

नववर्ष की शाम । खिड़की के बाहर पार्क स्ट्रीट पर ट्रैफिक बढ़ गया था। होटल में सारी सीटें प्रायः भर चुकी थीं । यह होटल वातानुकूलित है और कई 'एक्जाहस्ट फैन' अन्दर की हवा को बाहर फेंकने के लिए लगाए गए हैं, फिर भी सिगरेट के धुँए से हाल भर जाता है। मैंने आगन्तुक को सिगरेट का गहरा कश लेते हुए देखा । आधी सिगरेट जलने के बाद भी उसमें की राख झड़ी नहीं थी । मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह बड़ी सावधानी से राख को नीचे न गिरने से रोके हुए है। दोनों अँगुलियों के बीच सिगरेट को थामकर सिर आगे की ओर बढ़ाकर वह कश ले लेता। अँगुलियाँ स्थिर रहतीं और वह पीछे कुर्सी पर तनिक-सा उढ़क जाता। एक नजर सिगरेट की ओर देखता और मेरे चेहरे से होती हुई उसकी आँखें दूर कोने पर काउण्टर के इर्द-गिर्द एकाउन्टेन्ट को घेरकर खड़े हुए वेटरों की तरफ चली जातीं । यह क्रम लगभग दो-तीन मिनट तक चलता रहा ।

"ओफ ! कोई इधर आता ही नहीं ।" (उसका मतलब किसी वेटर से था) कलकत्ते में यही तो एक जगह अच्छी बची थी। यह भी अब बेकार हो गई । तुम क्या पी रहे हो ? 'बीयर' ? यह भी कोई पीने की चीज है ?" उसने मुझ पर आघात किया । जैसे मेरे मौन से वह चिढ़ गया हो। मैंने 'बीयर' की एक घूंट ली । अपनी देशी सस्ती 'पैनोरमा' सिगरेट जला ली और कश लेकर धुएँ की प्राचीर उसके और अपने बीच खड़ी कर दी। धुएँ के आर-पार मैंने उसे दोबारा ध्यानपूर्वक देखा—उसका रंग गेहुँआ था। चेहरा अंडे की तरह गोल। उम्र कोई तीस के आसपास रही होगी। आँखें छोटी, पर बहुत तेज थीं । आँखों के नीचे काले गढ़े थे । सिर के बाल काफी बढ़े हुए कन्धों तक झूल रहे थे । उसे देखकर लगा जैसे सैलून से अभी-अभी दाढ़ी बनाकर आया हो ।

"वेटर, वेटर !" उसने आवाज देकर बुलाया ।

वेटर के आने पर उसने शिकायत की—"देखो कितनी देर से आकर बैठा हूँ । कोई आर्डर लेने आता ही नहीं ।"

वेटर ने कहा—"सॉरी सर !"

"अच्छा सुनो । 'डबल डायमण्ड' । साथ में एक सोडा और कुछ खाने

को लाओ। क्या है ? नमकीन मत लाना। पीने के साथ मैं नमकीन नहीं लेता।''

वेटर ने मुस्कराते हुए कहा—''जी साब ! आप नमकीन तो लेते नहीं।'' इस पर वह खुश हो गया। बोला—''अच्छा तो तुम रशीद हो न ?''

''जी नहीं, मेरा नाम बशीर खाँ है।''

''अच्छा बशीर मियाँ, बढ़िया-सी बनवाकर एक प्लेट चिकेन चाप ले आओ।'' वेटर चला गया तो वह मेरी ओर देखते हुए बोला—

''यह भी अजीब बात है। मैं वेटरों के नाम भी याद नहीं कर पाता। तुम्हारी 'बीयर' तो समाप्त हो गई है, तुम कुछ और लो। यदि बुरा न मानो तो तुम्हारे लिए भी 'डायमण्ड' मँगाऊँ। मेरी ओर से एक लो। इतनी मुश्किल से मैंने खोजा है आज तुम्हें। इस खुशी में···।''

''नहीं, मैं 'बीयर' ही पीता हूँ। वह भी यदाकदा।''

''शायद तुम्हें मेरे साथ बैठना अच्छा नहीं लग रहा है। यदि कहो तो मैं दूसरी टेबुल पर चला जाऊँ ?''

''नहीं, ऐसी कोई बात नहीं।''

''तुम अन्यथा मत लेना, मैं थोड़ा बातूनी किस्म का आदमी हूँ।''

वह जिस बेतकल्लुफी से तुम पर उतर आया, उससे मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैंने दोबारा उसके बारे में याद करने की कोशिश की। इलाहाबाद, दिल्ली, शिमला, भोपाल, हैदराबाद, भुवनेश्वर, गोहाटी और अब यहाँ कलकत्ता। नौकरी के बीच बार-बार स्थानान्तरण और प्रवास के समय मेरे जितने भी परिचित थे या मेरे साथ जिनका थोड़ा भी लगाव था, उन सबके चेहरे याद किए, पर जो महानुभाव मेरे सामने आकर बैठ गये थे उन जैसा कोई याद नहीं आया। मैंने सोचा उससे ही पूछ लूँ—आप हैं कौन ? आपका नाम क्या है ? आपसे मेरा परिचय कहाँ, कब और कैसे हुआ ? मैं उससे कुछ पूछता तभी उसने मेरे सामने पड़ी सिगरेट की पैकेट की ओर हाथ बढ़ा दिया—''क्या मैं तुम्हारी मनपसन्द सिगरेट का स्वाद ले सकता हूँ ?''

''हाँ···हाँ···''

उसने मेरे चेहरे की ओर देखा। पैकेट से सिगरेट निकाली। माचिस से जलाकर मेरी ओर धुएँ के गोल छल्ले छोड़ने लगा। इस तरह मेरी सिगरेट पीकर धुआँ मेरे ही मुँह पर छोड़े जाते हुए देख मुझे अन्दर ही अन्दर कोफ्त हुई।

मैंने वेटर को आवाज देकर बुलाया।

वेटर के आने पर एक 'बीयर' का आर्डर दे दिया। कहा कि मेज साफ कर दे। एशट्रे भी। अब तक एशट्रे में बहुत सारी राख, सिगरेट के टुकड़े इकट्ठे हो गए थे।

"वेटर, साहब के लिए भी यही लाओ।" उसने अपना गिलास छूते हुए वेटर से कहा।

"नहीं, 'बीयर' ही लाना।" मेरी आवाज़ इस बार जरूरत से अधिक तेज और आक्रोशजनित थी। वेटर चला गया तो उसने मेरी ओर झुकते हुए कहा—"तुम जैसे लेखक को 'हार्ड रम' पीनी चाहिए। 'बीयर' पीने से ही तुम्हारी कहानियाँ घिसट-घिसट कर मन्थर गति से चलती हैं। अभी कुछ ही दिन पहले मैं पुस्तक मेले से तुम्हारा कहानी-संकलन खरीद लाया। 'धुएँ के बीच'। उसमें 'औरत' शीर्षक कहानी में बेचारा लूला पति, पत्नी की दुश्चरित्रता को अपनी आँखों से देखता है और आत्मघात कर लेता है।" मैंने उसे आश्चर्य से देखा। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरी कहानियों पर बातें करें। मुझे लगा कि वह धीरे-धीरे मेरे ऊपर हावी होता जा रहा है। वेटर 'बीयर' लेकर आ गया। गिलास में 'बीयर' ढाल ही रहा था कि मैंने सोचा वेटर से कह दूँ, मेरी टेबुल बदल दे। दूर एक टेबुल खाली थी। मैं उसी पर जाने के लिए वेटर से कुछ बोलता कि तभी वहाँ चार आदमी आकर बैठ गए। तीन पुरुष और एक महिला। 'बीयर' का एक घूँट लेकर मैं अपनी सिगरेट जलाने लगा। उसी बीच देखा, उसने एक साँस में अपना गिलास समाप्त कर दिया। जैसे मुझे दिखाना चाहता हो कि वह पीने में कितना चुस्त, होशियार और तेज है। मैंने उसके चेहरे को ध्यान से देखा। अब तक 'चिकेन चाप' लाकर बैरा मेज पर सजाने लगा था। उसने कहा—"एक प्लेट और लाओ।" बैरे ने दो प्लेटें मेज पर सजा दीं। उसने 'चिकेन चाप' का एक टुकड़ा दूसरी प्लेट में

छुरी-काँटे से उठाकर डाला और प्लेट उठाकर मेरे सामने रखते हुए कहा —"लो ! खाली पेट कभी नहीं पीना चाहिए। उससे पेट की लाइनें नष्ट होती हैं। लीवर खराब होने लगता है। रात में नीद नहीं आती। लेखकों को शायद इसीलिए रात में नींद नहीं आती। तुम्हें नींद आती है ?"

वह अजीब अहमक लगा। बातों के जाल में किस तरह मुझे बाँध रहा था। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि देखकर अन्दर ही अन्दर उसके प्रति आकर्षण भी मन में जागा। सोच रहा था कि एक अपरिचित व्यक्ति से अपने लेखन और दिनचर्याओं के बारे में बातचीत करना क्या ठीक रहेगा ? इस बीच मैंने उससे पूछा—"आपका नाम याद नहीं आ रहा है।"

मेरे मुँह से यह वाक्य संभवत: मेरी कहानियों पर उसके तीक्ष्ण व्यंग्य से बचने के लिए ही निकला था।

"अरे तुम मेरा नाम भी भूल गए ? याद करो। रवीन्द्र सदन वाले समारोह में मैंने कहानियों के ऊपर तुम्हारा भाषण सुना था। मंच से नीचे आने पर तुम्हें बधाई दी थी। वहाँ से निकलकर 'अकादमी आफ फाइन आर्ट्स' के पीछे वाले 'रेस्ट्राँ' में हमने चाय पी थी। साहित्य पर घंटों बातें की थीं। फिर तुमने अपनी एक पुस्तक 'वामाचारी' दी थी। अब भी याद नहीं आया ?"

मैं अपने दिमाग की पर्तों-दर-पर्तों में छिपे इस परिचय को निकालने लगा, पर कुछ भी याद नहीं आया। वह जिस तरह उदाहरण देकर परिचय की याद दिला रहा था उससे मुझे यही लगा कि मेरी स्मरण-शक्ति अब कमजोर पड़ती जा रही है। उम्र बढ़ने के साथ स्मरण-शक्ति घटती जाती है, यह बात उस दिन मन को गहरे-से छू गई।

मुझे चुप देखकर उसने कहा—"वैसे मैं तुम्हारी कहानियाँ पसन्द नहीं करता, पर तुम भले आदमी हो। कम-से-कम किसी की हत्या तो नहीं कर सकते। इसमें गुस्सा करने की कोई बात नहीं। ये मेर व्यक्तिगत अभिमत हैं।"

मुझे उस आदमी के परिचय के बारे में कुछ भी याद नहीं आया तो मेरे लिए यही एक उपाय था कि उसका बताया हुआ परिचय ही स्वीकार कर लूँ और स्वीकार लँ उसका बार-बार होता अपने ऊपर प्रहार।

"आप कविताएँ लिखते हैं न ?" मेरे पूछने पर उसने कहा—

"मैं बेवकूफ नहीं हूँ, न पागल हो गया हूँ जो कविताएँ लिखूँ।"

"क्या बेवकूफ और पागल ही कविताएँ लिखते हैं ?"

"कम-अज-कम आजकल तो यही हालत है। बंगला और दूसरी भाषाओं में। हाँ, तुमने दोबारा मेरा नाम जानना चाहा है। तिबारा भी जानना चाहोगे तो कहूँगा, मेरा नाम अमिताभ मिश्र है।"

"आप बंगला में लिखते हैं ?"

"तुम मुझे आप मत कहो भले ही सौ जूते लगा लो। मैं तुम कह रहा हूँ और तुम मुझे आप। तुम आत्मीयता का प्रतीक है। शायद तुम मुझे अपना आत्मीय नहीं समझते। पर बन्धु, याद रखो, किसी भी लेखक के लिए उसकी रचनाओं का श्रद्धालु पाठक सबसे अधिक आत्मीय होता है।"

उसने वेटर को बुलाया। वेटर हाथ में उसकी प्रिय 'डायमण्ड' व्हिस्की की पूरी बोतल लेकर आ गया और बिना उसके कहे ही उसके गिलास में एक पैग मापकर डालने लगा। सोडा खोलकर मेज पर रख दिया और बोतल लिए हुए काउण्टर की तरफ वापस चला गया। मैं जब तक उसके बारे में ही सोच रहा था—

"लेखक का सबसे बड़ा आत्मीय उसका श्रद्धालु पाठक होता है।" मेरे सामने जो महाशय तुम पर तुम बोलकर मुझे 'डायमण्ड' पिलाना चाहते हैं वे भी मेरे श्रद्धालु पाठक हैं। शायद। पर यदि श्रद्धालु पाठक गाहे-बगाहे इस प्रकार आकर हाट-बाजार, रेस्ट्राँ, बार में गले पड़ जाय, अपने और लेखक के बीच में कोई अन्तर ही न समझे तो क्या लेखक के सम्मान के लिए अच्छी बात होगी ? मैंने उससे कहा—"तुम आत्मीयता प्रकट करता है या अपमान, यह सम्बन्धों पर निर्भर करता है।"

"देखो, तुम बुरा मत मानना। मैं मुँहफट आदमी हूँ। सिर्फ मुँहफट, दिलफट नहीं।" उसने हँसने की कोशिश की तो होठों के बीच से उसके दाँत चमक उठे। मैंने उसके हँसने में उसका साथ नहीं दिया तो वह चुप हो गया। गिलास में सोडा मिलाया। गिलास उठाकर एक घूंट पिया और मेज पर जिस स्थान पर पहले गिलास रखा था उससे कुछ दूरी पर रख दिया। पहले जहाँ गिलास रखा था कुछ पानी की बूंदें एकत्र हो गई थीं। वह

अँगुली से उन बूंदों से मेज पर गीली लकीरें बनाने लगा। कभी गोल, कभी तिरछी, कभी एक-दूसरे को काटती हुई लकीरें साफ-साफ दिखाई दे रही थीं। उसी स्थिति में उसने कहा – "जानते हो वन्धु ! सारा बंगला साहित्य संक्रगण-काल से गुजर रहा है। सारा भारतीथ साहित्य भ्रष्ट हो चुका है क्योंकि सारी राजनीति गन्दी हो गई है। क्या बंगला, क्या असमिया, क्या पंजाबी, क्या तमिल, क्या हिन्दी, क्या सिन्धी। तुम जानते हो ऐसा क्यों है ? क्योंकि कोई ठीक-ठीक लेखक ही नहीं रहा। जो हैं वे अपने ही अस्तित्व को बचाने के लिए चौबीसों घंटे दिनचर्या की लड़ाई लड़ते हैं। सरकारी दफ्तरों, समाचार पत्रों, साहूकारों की दुकानों में। अँगुलियों पर गिनो तो पता चलेगा कि जो साहित्य-सेवा में लगे हैं, उन्हें राजनीति थैले में भरकर अपनी पीठ पर लादे हुए है। उनका सिर्फ मुँह उस थैले में से बाहर निकलकर झाँक रहा है। उनके सिर पर प्रशस्ति की बन्दर-टोपी और होठों के बीच थमा है—जनवादी, समाजवादी, शासनवादी, अभिवादनवादी, स्वनाम-धन्य साहित्य का लालीपाप। मीठा-मीठा गप्प। कड़ुआ-कड़ुआ थू। ओफ ! कैसी स्थिति है ! सारे देश में 'उईपोका' लग गए हैं। तुम लोग हिन्दी में 'उईपोका' को क्या कहते हो ?"

"दीमक।"

"हाँ-हाँ दीमक। काली चींटियों का दीमक।"

"दीमक सफेद चींटियों से लगते हैं।"

"काली चींटियों से मेरा अर्थ काली चमड़ी से है। तुम उन्हें सफेद कपड़े पहना सकते हो। गांधी ने ऐसा ही किया था। पर गांधी के बाद वे अपने सफेद कपड़े उतारकर, लोभ-लोभी नदी में अच्छी तरह नहाकर जनसेवा का नारा लगाते हुए कुर्सी के लिए पैंतरे बदल रहे हैं।"

"तुम्हारी घड़ी में क्या बजा है ?"

"सात बजकर दस मिनट।"

"इकत्तीस दिसम्बर, उन्नीस सौ तिरासी। दिन कौन-सा है ? हाँ शुक्रवार। शाम—नौ बजकर दस मिनट। मनीश कुमार तथा अमिताभ मिश्र। देखो कितनी आश्चर्य की बात है। जब भी मैंने गांधी का नाम लिया तब-तब देखा कि बस रात होने वाली है या रात है। उनकी आत्मकथा भी

पढ़ी तो लोडशेडिंग में, लालटेन के मद्धिम टिमटिमाते प्रकाश के नीचे। कैसी ट्रेजडी है इस देश की। तुम्हें मेरी बातें सुनकर दुःख हो रहा है! मैं जानता हूँ, तुम गांधी की तरह अहिंसक और निरामिष नहीं। तुम्हारी कहानियों को पढ़कर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि तुम अपने लेखन में तटस्थ होना चाहते हो। कहीं किसी भी वाद के चक्कर में न पड़कर, अपने को बचाते हुए एक निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हो। पर मेरे प्रिय मित्र! निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए आदमी को कुछ-न-कुछ त्यागना पड़ता है। भले ही ओढ़ा हुआ यथार्थ, अपना पारिवारिक जीवन, साहित्यिक पैंतरेबाजी, दिमाग की खोल में लिपटा अहं, वाद, चिन्तन फिलासफी। कुछ-न-कुछ छोड़ना ही होगा।''

''साहित्यिक पैंतरेबाजी से तुम्हारा क्या अर्थ है?''

''अर्थ है? साहित्यिक पैंतरेबाजी से मैं बेहद घृणा करता हूँ। कहानी में, आलोचना में, कविता तक में साहित्यिक पैंतरेबाजी कितनी बेमानी लगती है। कहना कुछ है, कहते कुछ हैं। सोचते कुछ हैं, लिखते कुछ हैं। जीते कुछ हैं, दिखाते कुछ हैं। साफ-साफ बात कहने में नानी मरती है। अब तुम्हें ही ले लो, 'औरत' कहानी में तुमने लूले आदमी को आत्म-हत्या करने पर विवश कर दिया, क्यों भला? वास्तव में उस औरत को मरना चाहिए।''

उसने पुनः मुझ पर तीखा प्रहार किया। उससे अपनी कहानियों पर बातचीत करने की मेरी जरा भी रुचि नहीं थी। फिर भी उसके शिकंजे से छूट पाना काफी मुश्किल लग रहा था। मैंने उसी से पूछा—''तुम क्या चाहते हो? लेखक को अपने पात्रों की राय लेकर लिखना चाहिए? या पाठकों के वोट खरीदकर? तुमने कभी कोई कहानी लिखी है?''

वह जोरों से हँस पड़ा। फिर हँसी दबाते हुए बोला—''पहली बात तो यह कि मैं झूठ बोलता नहीं और जो आदमी झूठ नहीं बोलता, वह भला किस्सा-कहानियाँ कैसे लिख सकता है?''

वह मेरे ऊपर बार-बार आक्रमण करता जा रहा था। कहानियाँ लिखने के मेरे पेशे पर आघात कर रहा था। मैंने सोचा उससे कह दूँ, टेबुल बदल ले या वाहियात की बहस न करे। मुझे व्यर्थ की बातों में न उलझाए।

समय नष्ट न करे। मूड खराब न करे आदि-आदि। लेकिन अन्दर से लगा कि यह आदमी काफी जागरूक, काफी रोचक है। हालाँकि उसकी बातें मुझे रुचिकर नहीं लग रही थीं। मेरी गम्भीर मुद्रा को सम्भवतः उसने पढ़ लिया। मुझसे पूछा—"तुम क्यों कुछ खा नहीं रहे हो ?"

मेरी नजर सामने रखी प्लेट पर पड़ी। एक टुकड़ा 'चिकेन चाप' ज्यों का त्यों रखा था। उसकी प्लेट साफ थी। मैंने सोचा यही अवसर है उसे आघात पहुँचाने का। मैंने प्लेट को उसकी तरफ सरकाने के लिए हाथ बढ़ाया कि एक ब्रेक-सी लगी। हाथ रुक गया। गिलास ऊपर उठाया और 'बीयर' का एक घूँट पीकर गिलास रख दिया। फिर सिगरेट जलाकर धुएँ के बादल बनाकर उन बादलों में कुछ देर तक अपनी आँखों को उसके चेहरे पर धँसाए उसे ही देखता रहा। धुएँ के उस पार वह चुपचाप बैठा था। अब तक मैं देख रहा था कि जब भी मैं 'बीयर' सिप करने के लिए अपना गिलास उठाता हूँ तो साथ-साथ वह भी अपना गिलास उठाकर पीने लगता है। पर इस बार उसने अपना गिलास नहीं उठाया। सिगरेट का गहरा कश लेते हुए बैठा रहा। सम्भवतः वह मुझे हर्ट करना चाहता था। पर ऐसी बात नहीं भी हो सकती। 'कैफे', 'बार' में कौन, क्या, कैसे खाता-पीता है, अपनी-अपनी आदत होती है। और फिर दूसरे के तौर-तरीकों से आहत होने वाला भला मैं कौन हूँ। फिर भी मेरे अन्दर का अहम् इस बात से जैसे कुढ़ उठा कि वह जान-बूझकर अपने मौन के कुहासे में मेरा मानमर्दन कर रहा है। अपनी चुप्पी तोड़ते हुए उसने पूछा—"तुम शाकाहारी हो ?"

मैं कुछ उत्तर देता कि इसके पहले ही वह दोबारा बोल उठा—"जो शाकाहारी होते हैं, खासकर लिखने-पढ़ने वाले लोग, वे अक्सर घास, पत्ता, हवा, बतास पर ज्यादा कहानियाँ लिखते हैं। जायके के बतौर रूमानियत या हत्या, आत्महत्या का नमक-मिर्च मिला देते हैं। तुम्हारी हिन्दी में शाकाहारी किस्म के लेखक अधिक हैं। हैं न ?"

अब मेरे मौन का बाँध टूटा था। हाँ, मुझे ठीक-ठीक याद है। आक्रोश-जनित आवाज मेरे मुँह से फूट पड़ी थी—"मांसाहारी, शाकाहारी होना लेखन से भला क्या सम्बन्ध रखता है ? लेखन तो अपनी अभिव्यक्ति की

कसौटी है। अनुभवों का लेखाजोखा। चिन्तन की बुनावट।…"

"माफ करना प्यारे भाई ! मैं तुम्हारी बातों से सहमत नहीं। भोजन से आदमी के जीवन और उसकी सोच पर गहरा असर पड़ता है। वेदों में सत, रज, तम तीनों गुणों की चर्चा मिथ्या नहीं हो सकती। तुम उसे मिथ्या मानते हो, इसका मतलब तुम्हारे पाँवों के नीचे से भारत की सांस्कृतिक जमीन खिसक रही है।"

मुझे लगा कि वह मुझे पौराणिक युग में खींचकर मुझ पर अपने को हावी करना चाहता है। सम्भवत: वेद-संस्कृति को अच्छी तरह पढ़ा है उसने। मैंने कहा—"सत, रज, तम गुण हैं, चिन्तन नहीं। आज के जीवन के साथ उनका मेल नहीं हो सकता।"

"देखो, अपने अतीत को झुठलाया नहीं जा सकता। जो अतीत को झुठलाते हैं, वे वर्तमान से कट जाते हैं। फिर उनका भविष्य किस प्रकार का होगा इसे भविष्य ही जाने।"

उसके चिन्तन की जड़ों का विस्तार देखकर मुझे स्पष्ट लगा कि इस व्यक्ति ने धर्मशास्त्रों का जरूर अध्ययन किया है। उसने बीच में ही कहा—सतो, रजो, तमोगुण के आधार पर ही गीता लिखी गई है। इन्हीं तीनों गुणों को लेकर ऋषियों ने आचारसंहिताएँ, धार्मिक रीतियाँ, पद्धतियाँ बनायीं और यही तीनों गुण इस बीसवीं शताब्दी में, इस अणु-युद्ध के खतरे से भयभीत, संकटग्रस्त मानव के लिए सार्थक सिद्ध हो सकेंगे। तुम सोचते होगे मैं तुम्हें बेकार बोर कर रहा हूँ। पर मैं सही बात बोलने के पक्ष में हूँ। हालाँकि सही बातें कहने वाले अब रहे ही नहीं। देखो प्यारे भाई ! इस भयाक्रान्त संकटग्रस्त दुनिया को सतोगुण का आचरण ही बचा सकता है।

"तुम क्या सोचते हो, तुम्हीं एक आदमी हो जिसे सही बातों की जानकारी है और तुम्हीं सही बातें करना जानते हो ! इस विनाश के ढेर पर खड़ी शताब्दी को सतोगुण नहीं, आदमी की अपनी ईमानदारी, आदमी के प्रति प्यार, दोस्ती, सुख, समृद्धि और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना बचा सकती है। सतो, तमो, रजोगुण आउट आफ डेट हो चुके।"

मैंने उस पर आघात किया। मुझे लग रहा था कि वह मेरी बात से तिलमिला उठेगा। मुझे अन्दर-ही-अन्दर खुशी हुई। ध्यान से उसका चेहरा

पढ़ने लगा पर उस पर मेरी बातों की कोई ऐसी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसने एक साँस में अपना गिलास समाप्त कर दिया। वेटर को बुलाने के लिए धीरे से चुटकी बजाई पर शायद उसे चुटकी बजाना आता नहीं था। चुटकी की आवाज हमारे बीच ही उभर कर रह गई। वेटर को न आता देख उसने मेज थपथपाई। वेटर आ गया तो बोला—"मेज साफ कर दो भाईजान। जरा इधर भी आ जाया करो।"

वेटर झेंप गया। उसी झेंप को मिटाने के लिए सायास मुस्कराया। मेज से उसके सामने की प्लेटें, टमाटर की चटनी, मिर्चे की चटनी की बोतलें ट्रे में रख लीं तो उसने मेरे सामने वाली प्लेट की ओर इशारा करते हुए वेटर से कहा—"इसे भी ले जाओ।" मुझे उसके इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। मैंने उससे कहा—"तुम इसे भी खा लेते।"

"मैं किसी का हिस्सा नहीं खाता। मैंने दो टुकड़े 'चिकन चाप' के मँगाए ही थे, एक अपने लिए, दूसरा तुम्हारे लिए। अब तुम झूठ बोल रहे हो कि तुम्हें भूख नहीं। क्या मैं ही एक भूखा आदमी इस धरती पर पैदा होकर आया हूँ। वेटर, ले जाओ इसे।" उसके चेहरे पर उत्तेजना झलकने लगी।

"तुम उत्तेजित क्यों होते हो ? मैंने तो तुमसे कहा नहीं था कि मेरे लिए भी मँगवाओ।"

"मैं तुम पर उत्तेजित नहीं हो रहा हूँ। अपने आप पर उत्तेजित हूँ। इसमें तुम्हें बुरा मानने की जरूरत नहीं। यह मेरी निजी बात है।"

"होगी। पर मुझे समेट कर तुम उत्तेजित हो रहे हो इसीलिए मैं मानता हूँ कि अकारण उत्तेजित होना, न अतीत के प्रति आस्थावान होना है और न ही वर्तमान से जुड़ने की बात हो सकती है।" मैंने उस पर प्रहार किया।

वह चुप रहा। वेटर अब तक उसकी मनचाही ब्राण्ड 'डायमण्ड' की बोतल लेकर आ गया। उसके गिलास में एक पैग डालकर सोडा मिलाने लगा तो उसने मना कर दिया—"नहीं। पानी लाओ।"

वेटर पानी की बोतल लाकर रख गया। वह पानी की बोतल उठाकर गिलास में ढालते हुए बोला—"अधकचरा ज्ञान उसी तरह होता है

जैसे एक इंच दारू में आध फुट पानी मिलाना। इंच भर दारू अतीत है और आध फुट पानी वर्तमान। इसे जो पिए और लगाए भविष्य पर दाव वही है अधकचरा ज्ञान जो जोड़ता जीवन से मरण का नाता।''

''तुम कविताएँ अच्छी लिख सकते हो।''

''जब डिप्रेशन में रहता हूँ तभी लिख पाता हूँ।''

''डिप्रेशन के लिए अलग से कुछ करना पड़ता है ?'' मैंने उसे खरोंचा।

''डिप्रेशन के लिए ? हुँह। दारू पीना। श्मशान में जलते मुर्दे देखना। मन में आए तो 'सोनागाछी' वेश्याबाड़ी जाना। या लगातार शहर की सड़कों पर चलते जाना। थकते रहने पर भी बस चलते जाना या भग्न-प्रेम से आहत मन के अन्दर अतीत कुरेदना।'' वह बीच में चुप हो गया। उसने एक घूँट पी। सिगरेट जलाई। लम्बा कश लिया। धुआँ अपने दायीं ओर छोड़ते हुए उसकी आँखें कोने वाली टेबुल पर जा टिकी। एक लड़की के साथ तीन व्यक्ति बैठे जोरों से बातचीत कर रहे थे। औरत नशे में बहक रही थी। उसकी आवाज पुरुषों की आवाज से अपेक्षाकृत तेज थी। उसकी अँगुलियों में सिगरेट थमी थी। सिगरेट पीते हुए अधिक चंचल लग रही थी।

''तुम देख रहे हो न, वहाँ, उस टेबुल पर जो औरत बैठी है, एक बंगला फिल्म की नायिका है। परन्तु अब मधु-कलश मधुयामिनी है। और उसके साथ जो फ्रेन्चकट दाढ़ी वाला आदमी है, अम्लान चटर्जी है, नाटककार। एक नम्बर का शराबी-कबाबी। और उन दो चमचों को देखो। खैर छोड़ो। अच्छा है। मौज मस्ती कर लें। क्या नाम है तुम्हारी हिन्दी के एक बड़े कवि का ? उनकी कविता है न—इस पार प्रिये तुम हो मधु है, उस पार न जाने क्या होगा।'' वह इन पंक्तियों को सस्वर गाने लगा। फिर बोला—''पहले के लोग अच्छा लिखते थे। कुछ तबियत से लिखते थे। पढ़ने में आनन्द आता है। देखो यह गीत कितना मर्मस्पर्शी है। और एक तुम लोग हो कि कूड़ा लिख रहे हो और फिर कहते हो कि यही आधुनिक भावबोध है। आधुनिक भावबोध किसी रंडी की पलंग पर नहीं होता और न ही आवारा कुत्ते की दुम में। मैंने अभी-अभी तुम्हारी एक

कहानी का नाम लिया था। हाँ, 'औरत'। उसमें लँगड़े पति की जवान बीवी रात-भर घर से गायब रहती है। पति की बैसाखियाँ छुपाकर रख देती है। एक रात लँगड़ा आदमी घिसट-घिसटकर पड़ोसी के मकान तक जाता है। किवाड़ की फाँक से देखता है, उसकी बीवी 'मोदीखाना' के मालिक के साथ रँगरेलियाँ मना रही है और वह सड़क के बीचोबीच आकर तेजी से आती हुई बस के नीचे आत्मघात कर लेता है। आत्महत्या वाली बात मुझे अच्छी नहीं लगी। इसमें मानवीयता नहीं। दरअसल होना यह चाहिए था कि उस औरत को अपने विकलांग पति की सेवा भक्ति-भाव से करनी चाहिए और 'मोदीखाने' के मालिक को उस औरत के साथ अपने असफल प्रेम के कारण चूहों की दवा खाकर आत्महत्या कर लेनी चाहिए।"

मेरा दिमाग उसकी बातों से तन गया। मैं उससे अपनी कहानियों पर कोई राय नहीं लेना चाहता था। मेरा मन हुआ उससे कह दूँ कि वह चुप रहे, लेकिन मैं उससे कुछ कहता कि इसके पहले ही वह बोल उठा—

"वैसे तुम्हारी बात कुछ हद तक सही भी हो सकती है। काम-पिपासा का उद्वेग बड़ा भयानक होता है। कुत्तों, घोड़ों और गधों से लेकर आदमी तक में। उस औरत का क्या दोष! सुन्दर थी, जवान थी।"

"लूला आदमी भी सुन्दर और जवान था। एक आफिस में मैनेजर था। अपना फ्लैट, अपनी कार भी थी। शादी के बाद एक सड़क-दुर्घटना में उसकी एक टाँग जाती रही। शायद यह बात तुमने नहीं पढ़ी।"

"मैं टाँगें न रहने के बाद की स्थिति पर बात कर रहा हूँ। क्या वह अपनी पत्नी को संतुष्ट कर सकता था?"

"यदि वह अपनी स्त्री को संतुष्ट नहीं कर सकता था तो विकल्प यही था कि वह मोदीखाना के मालिक से अवैध सम्बन्ध रखती।"

"यह तो कहानी की बात हुई। मैं आदमी के बीच की अच्छाइयों की बात कर रहा हूँ। क्या तुम लोग लिखकर मनोरंजन ही करते रहोगे या मनुष्य की भलाई के लिए भी कुछ सोचोगे?"

मैं तैश में आ गया। मेरा मन हुआ कि कालर पकड़ कर उससे पूछूँ—आखिर तुम्हें मेरी कहानियों पर आलोचन करने का अधिकार-पत्र किसने

दिया ? पर तभी उसने आत्मीयता से मेरे करीब झुकते हुए कहा—"एक पैग ह्विस्की लो, मेरी ओर से। प्लीज !"

उसकी आवाज से मैं चौंक-सा गया। मेरा गिलास खाली हो चुका था और मुझे इसका अहसास तक नहीं रहा। मैंने उसे कोई जवाब न देकर वेटर को इशारे से बुलाया—"एक बीयर" और वह बीच में टोकते हुए बोला—"नहीं, साहब के लिए एक 'डायमण्ड' और सोडा लाओ। बिल मुझे देना।" फिर मेरी ओर देखते हुए कहने लगा—"बीयर तो औरतों के पीने की चीज है। टेक हार्ड ह्विस्की आर रम एण्ड बी ए मैन।" पीने के बारे में उसकी अकारण नसीहत से मैं तिलमिला उठा। चिल्लाने जैसे स्वर में वेटर से कहा – "तुम बीयर ही लाओ।"

वेटर हम दोनों के तने हुए चेहरों पर अपनी कौतूहलपूर्ण आँखें बिछाता हुआ चला गया। मैंने सिगरेट निकालने के लिए पैकेट खोली तो देखा वह खाली थी। वह अपनी पैकेट मेरी ओर बढ़ाते हुए बोला--"हैव इट। डोण्ट बी हैजीटेटेड। नाराजगी, गुस्सा, नफरत कम-से-कम लेखक को तो नहीं ही करना चाहिए।"

मैंने वेटर को बुलाया। पाकेट से पाँच रुपये का नोट निकाल कर उसे थमाते हुए एक पैकेट इनहिल और माचिस के लिए कह दिया।

अचानक ही बत्तियाँ गुल हो गईं। अँधेरा छा गया। बाहर सड़क की रोशनी भी बुझ गई। कैफे में चारों ओर छाए अँधेरे के बीच उसकी आवाज गूंज उठी—"अन्दर अँधेरा। बाहर अँधेरा। इस देश की तकदीर को पता नहीं कब तक अँधेरा अपनी मुट्ठी में दबाए रखेगा। 'लोडशेडिंग' और पैंतीस वर्षों से 'टियर-शेडिंग'। आह क्या समय है। 'लोडशेडिंग' पर नेता अपने आँसू बहाते हैं पर अपने घरों की रोशनी का एक भी कतरा उजाला दूसरों को नहीं दे सकते।"

अब तक 'बार' की इमरजेन्सी लाइट जल चुकी थी। मुझे उसका चेहरा साफ-साफ दिखाई दे रहा था। क्रोध से, आवेश से उफनता हुआ। अचानक इमरजेन्सी लाइट भी बुझ गई।

'वेटर' कैण्डिल लाइट जलाकर सभी टेबुलों पर रखते जा रहे थे, पर सिगरेट के धुएँ में वहाँ ठहर पाना मुश्किल हो गया था।

प्रायः चीखते हुए बोला था वह—"वेटर, जरा अपने मैनेजर को बुलाना।" मैनेजर के आने पर वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उससे हाथ मिलाते हुए बोला—"जेनरेटर चलाइए न। इस तरह अँधेरे में और वह भी नये वर्ष की शाम। कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"सर, जेनरेटर चलाने वाले मिस्त्री इलेक्ट्रिशियन हड़ताल पर हैं। होटल का बेकरी प्लाण्ट दो महीने से बन्द पड़ा है। बस साहब, यही दो-चार बैरे किसी तरह काम पर आते हैं। किसी तरह काम चला रहा हूँ।"

"तो आप उनकी माँगें मान लीजिए।" उसने होटल-मैनेजर को सुझाया।

"हम कौन होते हैं मजदूरों की माँगें मान लेने वाले! साहब लोग, बड़े मालिक लोग जानें। आई एम सॉरी। कोई उपाय नहीं।"

वह हारकर बैठ गया। बोला—"और कहीं चलते हैं। इस तरह शाम बरबाद करने से क्या फायदा।"

"पूरे कलकत्ता में लोडशेडिंग है। देखा नहीं आज का अख़बार। संथाल-डीह का पावर प्लान्ट बन्द हो गया है।"

"दिन-भर की घुटन-भरी दिनचर्याओं से कटकर शान्ति खोजने आया तो यहाँ भी दमघोंटू वातावरण। अच्छा तुम बताओ यह देश कब तरक्की करेगा, कब आगे बढ़ेगा। बड़े-बड़े नारों और आदर्शों वाला यह विपन्न हतभागा देश।" मुझे उससे आत्मीयता हो उठी। लगा कि इस आदमी ने काफी संघर्ष झेला होगा, अपने जीवन में, बहुत कुछ सहा होगा। तभी इतना साफ-साफ बोल रहा है। मैंने उससे कहा—"यहीं लोडशेडिंग होती है, ऐसी बात नहीं, और देशों में भी लोडशेडिंग होती है। गाँवों में तो और भी बदतर हालत है। लोग पानी की पम्पें, मशीनें नहीं चला पाते। हरी-भरी फसलें सूखती रहती हैं। छोटे उद्योग-धन्धे बन्द पड़े रहते हैं···।"

कुछ क्षणों बाद मैनेजर हमारे पास आकर बोला—"सर! कुछ देर बाद 'जेनरेटर' चालू कर देंगे। बगल की इलेक्ट्रिक दुकान से मिस्त्री बुलाया है।" कोने वाली टेबुल से एक आवाज उभरी थी—"नहीं-नहीं। डोन्ट बी इक्साइटेड। ओफ़, क्या करते हो!" मोमबत्ती के मद्धिम प्रकाश में नायिका अम्लान चटर्जी के मुँह को अपने मुँह के पास आते हुए दोनों

हाथों से पकड़कर ठेल रही थी। उसके पास बैठे दोनों छोकरे ठहाका लगा रहे थे। आसपास की टेबुल पर बैठे हुए लोग जाकर चारों ओर घेरकर खड़े हो गए—'हैप्पी न्यू इयर्स' का कोरस गाने के लिए प्रस्तुत थे तथी यकायक बत्तियाँ जल उठीं। सभी अपनी-अपनी टेबुल पर वापस चले गए। अपने-अपने गिलास को 'सिप' करते हुए 'चियर्स' की आवाज दी, जैसे बत्ती का आ जाना एक सुखद शुभ घटना हो। उसने धीरे से कहा—"देखा। रोशनी पाकर लोग खुश हो गए। यही है अपने देश का चारित्रिक बैरोमीटर। मिले तो खुश, न मिले तो राम भरोसे। कभी बिजली के अभाव को लेकर आज तक इस देश में कोई आन्दोलन छिड़ा है? कोई 'बन्ध' नहीं मनाया गया। आलस और व्यर्थ के झमेले में न पड़ने की आदत ने इस देश के लोगों को कायर, कापुरुष बना दिया है। देखो, उधर देखो, जिन लोगों के चेहरे पर मुर्दनी झलक रही थी, उन्हीं चेहरों पर अब खुशी छाई हुई है। तुम इस बात को याद रखना। यदि लोग अपने अधिकारों और हितों के बारे में सोच नहीं सकते, लड़ नहीं सकते तो ऐसे लोग या तो गरीबी में खुश रहते हैं या दासता में। इस शताब्दी में भी यहाँ के लोग यही विश्वास करते हैं कि गरीबी और मुसीबत भाग्य की देन हैं। पाप-पुण्य भाग्य की देन है। दायें-बाएँ चलना भी भाग्य-देवता की अँगुली के इशारे से होता है। इस भाग्य और धर्मपरायण जाति को कोई माई का लाल टस से मस नहीं कर सकता। तुम्हें याद है बंगाल का अकाल? किसी से सुना है उसके बारे में? तब तो तुम और मैं बच्चे थे। तुम्हारी क्या उम्र होगी?"

"चालीस।"

"चालीस की उम्र कम नहीं होती। मेरी पैंतीस है। इस तरह तुम मेरे बड़े भाई हो। ब्रदर, मेरी बातों का बुरा मत मानना। असल में बिना कुछ बोले रहा नही जाता। चुपचाप जिया नहीं जाता। हालाँकि इस तरह दारू पीकर उपदेश देने या उपदेश सुनने में ऐसा लगता है जैसे किसी बाजारू औरत के बालों में बासी कमल का फूल सजाया जाता हो···।"

होटल में भीड़ बढ़ गई थी। स्टेज पर कुछ गाने-बजाने वाले छोकरे आकर खड़े हो गए। अपने-अपने वाद्य-यंत्रों को ठीक करने लगे। एक

फिसलती हुई नज़र उसने गाने-बजाने वालों पर फेरी और फिर यथावत् स्थिर बैठते हुए कहा—"कोई खास कार्यक्रम है ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"क्यों, क्या तुम इस 'बार' में नये आए हो ?"

कोई उत्तर न पाकर वह मुझे 'टीज' करने के उद्देश्य से बोला—"जानता हूँ, तुम सहज होकर नहीं बोलोगे। हर लेखक ऐसा ही होता है। उसके अहम् के चारों ओर इतनी सारी ग्रन्थियाँ होती हैं कि एक खोलने पर हजार पैदा होती हैं। जो यथार्थ झेलता-भोगता है, अकसर सही-सही लिखता नहीं।"

मुझे उसकी बातों से अन्दर-ही-अन्दर ऊब पैदा होने लगी थी। वह मुझ पर लगातार आघात पर आघात करता जा रहा था और मैं कुढ़ता, तिलमिलाता उसका कटु-सम्भाषण सुनता जा रहा था। मन में आया, कह दूँ—'शान्त रहो' या लिखकर उसके सामने मेज पर चिपका दूँ—'साइलेन्स प्लीज' या उठकर बाहर चला जाऊँ। पर जाऊँगा भी कहाँ। नये वर्ष की शाम। इस तरह अपना मूड चौपट कर सड़कों पर मारे-मारे घूमते रहने से अच्छा है यहीं बैठकर इसकी ऊल-फजूल बातों को सुनूँ और अपना सिर धुनूँ। मेरे मौन को शायद उसने भाँप लिया। आत्मीयता से बोला—"देखो ! मैं व्यर्थ की बातों में विश्वास नहीं करता। अकसर किसी के साथ ज्यादा बातें भी नहीं करता, न अपने पेशे की बात न किसी दूसरे के पेशे की। तुम जानते हो मैं 'दैनिक आजकल' में कला-समीक्षक हूँ। सप्ताह में एक बार आफिस जाकर अपनी टिप्पणी दे आता हूँ। न सम्पादक से उसके कमरे में कभी मिलने जाता हूँ और न सम्पादक की जी-हुजूरी करता हूँ। अच्छा लगेगा छापेंगे, नहीं भाड़ में जाएँ। बस महीने की पहली तारीख को अपना वेतन लेने जाने पर सम्पादक या मैनेजर का दर्शन करना पड़ता है। प्रेस के दफ्तर भी महीने में कुछ ही दिन जाता हूँ। बस काम से काम। मेरा काम नगर की परिक्रमा कर कला-सम्बन्धी कार्यक्रमों की समीक्षा दे देना है, सो दे देता हूँ। इससे पहले मैं 'न्यूज सेक्शन' में था। बेहद बोर काम है। पत्रकार को मैं 'कलम घसीटू' मानता हूँ।"

उसकी बातें सुनकर मुझे लगा कि अब मैं उस पर आक्रमण कर सकता

हूँ। मेरे होंठ व्यंग्य में फैल गए। चेहरे पर गर्वमिश्रित भाव छा गया। उसके चेहरे पर आँखें टिकाते हुए कहा—"काम से जी चुराना कहाँ की ईमानदारी है? क्या यह अनुत्तरदायित्व-बोध नहीं? अनुशासनहीनता की आदत इस देश के पढ़े-लिखे लोगों का जन्मसिद्ध अधिकार होती जा रही है।"

वह मेरी बात सुनकर हँस पड़ा—"हो हो हो! इसे तुम अनुशासनहीनता की संज्ञा देते हो। अरे भाई, मैं समीक्षा लिखता हूँ। छापने के लिए दे आता हूँ। छपा तो ठीक, नहीं छपा तो ठीक। मेरे मूड को कोई खरीद नहीं सकता और न ही मैं उसे बेचना पसन्द करता हूँ। क्या तुम चाहोगे कि लेखकीय तबियत को भी दाँव पर लगा दूँ। नौकरी मुझे कला-समीक्षा लिखने के लिए मिली है, सो लिखता हूँ। हमारे पास एक मूड ही तो बच गया है। बाकी सब तो क्रूर समय के पाकेटमार हाथों ने कब का छीन लिया।"

मैंने कहा—"समय के हाथों नहीं छिना। हमने ही समय को दे डाला। कब, कहाँ और कैसे समय के साथ हम जुड़ते हैं, जुड़ेंगे, जुड़े थे, इसे भी समझना जरूरी है?" कुछ देर की चुप्पी के बाद उसने पूछा—"तुम ज्योतिष, भाग्य वगैरह में शायद विश्वास करते हो?"

"कोई खास नहीं। कभी-कभी फुटपाथ की गरीबी और इस शहर के रईसों को देखकर विश्वास करना पड़ता है।"

"यानी भाग्य पर विश्वास करते हो।"

"हाँ, कभी-कभी। जब कोई उपाय न हो।"

"तुममें मैंने अब तक एक अहम् बात देखी है। तुम किसी बिन्दु पर निश्चयात्मक भाव से ठहरते नहीं। न ही उस बिन्दु को सकारात्मक अर्थ ही दे सकते हो।"

"मैं परवाह नहीं करता।"

"लेखक नहीं परवाह करेगा तो खरीदे गए वोटों के बल पर लोभलाभी कुर्सी पर बैठा नेता करेगा। आइ एम सॉरी। विद् आल ड्यू रिस्पेक्ट टु यू। हालाँकि तुम नेता नहीं हो। फिर भी देखो आइ लाइक यू। नाट एज राइटर, बट एज ए मैन। तुम बुरे नहीं बन सकते। लेकिन तुम इतनी दकियानूस और अधकचरी कहानियाँ लिखना बन्द करो। इससे अच्छा

होता 'खलासी टोला' में बैठकर ठर्रा पीते और डायरी लिखते। तुम 'खलासी टोला' कभी गए हो? वैलिंग्डन स्क्वायर के पास है।''

मैं तेश में आ गया—''स्टाप इट! मैं अपने लेखन पर तुमसे किसी तरह की बहस नहीं करना चाहता। तुम दूसरी टेबुल पर चले जाओ। मुझे शान्ति से बैठने दो।''

दूसरी टेबुल पर जाने के बजाय वह मेरे करीब झुककर मेरे मुँह पर अपनी आँखें टिकाते हुए बोला—''आप मुझे आँख मत दिखाइए। मैं अपने पैसे से पी रहा हूँ। यह 'पब्लिक बार' है, आपका बैठकखाना नहीं। इस टेबुल पर दो आदमी बैठ सकते हैं। एक ही के लिए बनाई गई होती तो मैं यहाँ बैठकर तुम्हें कष्ट न देता। रह गई बातचीत न करने की बात सो मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम एक लेखक हो। जन-जीवन की बातें लिखते हो। मैं ठहरा एक दैनिक अखबार का गँवार कला-समीक्षक। फिर भी जन तो हूँ। तुममें-मुझमें बस थोड़ा-सा अन्तर है। अन्तर होना ही चाहिए। पर जरा सोचो, दो आदमी एक ही टेबुल पर बैठे हों और मुँह बन्द कर दारू-पान करते हों, इसे देखकर कोई भी तीसरा या चौथा व्यक्ति हमें या तो बुर्जुआ, दकियानूस कहेगा या घोंघावसन्त। इतने भावुक क्यों होते हो। आज नये वर्ष की शाम है। अन्तर्राष्ट्रीय दिन। सारी दुनिया में ही नहीं अन्तरिक्ष में भी यह शाम मौज-मस्ती के साथ मनाई जाती होगी। और एक हम हैं कि यहाँ एक टेबुल पर बैठकर एक-दूसरे को सहन नहीं कर सकते।'' उसने एक लम्बा घूँट पीते हुए गिलास खालीकर दिया। सिगरेट की पैकेट खाली थी। टटोलकर उसे दो अँगुलियों से गोली खेलने की मुद्रा में मारा। पैकेट मेज पर काफी दूर तक सरकती चली गई। बिना मुझसे पूछे मेरी सिगरेट की पैकेट ले ली। उसमें से एक सिगरेट निकाली और जलाकर गहरा कश लेने लगा। मैं बची हुई 'बीयर' की बोतल से खाली गिलास भरने लगा, हालाँकि ऐसी जरूरत नहीं थी, उसमें पहले से ही थोड़ी-सी 'बीयर' बची थी। मुझे महसूस हुआ कि हम दोनों ही अपना-अपना अहम् सहेज-समेट रहे हैं, दूसरे वाक्-युद्ध के लिए। दूसरे विचार-पैंतरे के लिए। दूसरी भावुकता की खोल पहनने के लिए या उतारने के लिए। दूर की टेबुल पर अम्लान चटर्जी के साथ बैठी महिला बहक रही

थी। एक जोड़ा उनसे थोड़ी दूर की टेबुल पर आकर बैठ गया। नई-नई शादी के जोड़े जैसे लग रहे थे दोनों। औरत लाल बनारसी सिल्क की साड़ी में लिपटी हुई थी और पुरुष गहरे नीले शूट में। मैंने उधर देखते हुए अपना गिलास उठाकर 'सिप' किया। तभी कैफे में एक घटना घट गई। मेरे पीछे वाली टेबुल पर दो लड़कियों के साथ जो आदमी मेरे होटल में दाखिल होने से पहले से बैठा पी रहा था, अचानक जोरों से रोने लगा। रोते-रोते उसकी घिग्घियाँ बँध गईं। दोनों में से एक लड़की उसे चुप करा रही थी, दूसरी तनी हुई बैठी थी। पुरुष की उम्र पचास के आसपास थी। स्वस्थ शरीर, गेहुँआ रंग, नीले रंग की बुशर्ट और सफेद पैंट में संभ्रान्त रईस-सा लग रहा था। दोनों लड़कियों में से जो चुपचाप अन्यमनस्क-सी गुस्से में ऐंठी बैठी थी, तीस के आसपास रही होगी। पीली सिफौन की साड़ी, जूड़े में बेली माला सजाए थी। दूसरी लड़की लगभग पच्चीस की रही होगी। नीले रंग की साटन साड़ी में, 'बाब कट' बाल कन्धे पर लहरा रहे थे। वही उस रोते हुए आदमी को चुप करा रही थी। आवाज हम दोनों तक आ रही थी। अपने सामने बैठे हुए पत्रकार मित्र से अलग होकर मेरा दिमाग इस रूदन-कांड के कारणों का पता लगाने के लिए तेजी से चक्कर काटने लगा। काउण्टर पर खड़ा 'स्टुआर्ट' उनकी टेबुल तक गया तो दूसरी लड़की ने उससे कहा—"प्लीज डोन्ट माइन्ड। ही इज ए बिट सेन्टीमेन्टल।" (कृपया अन्यथा न लें। ये जरा भावुक किस्म के हैं) निजी मामला है। 'स्टुआर्ट' अपनी उड़ती हुई निगाह उस रोते हुए व्यक्ति, उन दोनों लड़कियों और टेबुल पर सजे हुए खाने-पीने के सामानों पर डालता हुआ वापस चला गया और काउण्टर क्लर्क से बातें करने लगा।

मैंने देखा कि पहली वाली औरत ने कुछ कहा। क्या कहा, मैंने सुना नहीं। इतना जरूर अन्दाजा लगा सकता हूँ कि उसने उस आदमी पर तीखा प्रहार किया। दूसरी लड़की उसके प्रतिवाद में बोली—"दीदी! आप चुप नहीं रह सकतीं? प्लीज!" इस पर उस आदमी ने रोते हुए ही कहा—"शिप्रा! सच कहता हूँ, आज चार साल से इस औरत ने मेरा जीना हराम कर दिया। अब तो निर्णय लेना ही है। इसे या मुझे।"

आवेश में उस औरत के नथुने फूलने-पिचकने लगे। चेहरा तमतमा उठा। आँखें फैल गईं। एक चटकदार आवाज मेरे कानों में गूंज उठी—"मैं सब समझती हूँ। तुम ऐसा क्यों कह रहे हो।"

"दीदी! आप मुझ पर दोष मत लगाइए। इसमें मेरा क्या कसूर भला।" कहकर वह सिसकने लगी।

कुछ देर तक के लिए दोनों औरतें खामोशी के जाल बुनने लगी थीं। मर्द का रोना कुछ कम हो गया। पर वह अब भी हिचकियाँ ले रहा था। मुझे लगा कि यह बचपन में इसी तरह से स्कूल में मास्टर की मार खाकर रो-रोकर हिचकियाँ लेता रहा होगा। लड़की ने वेटर को बुलाया और बिल का पेमेन्ट करने के लिए अपना पर्स खोला तो पुरुष ने उसका हाथ पकड़ लिया—"नहीं, तुम नहीं। मैं दूंगा।" और सौ रुपए का नोट निकालकर वेटर की ओर बढ़ा दिया—"बाकी के रख लेना।" सीट से उठने लगा पर उठा नहीं गया। फिर बैठ गया। लड़की उसे सहारा देने के लिए उठती कि इससे पहले ही वह अचानक उठ खड़ा हुआ और अपने को सहेजते-सँभालते हुए धीरे-धीरे होटल के गेट से बाहर निकल गया। उसके पीछे-पीछे दोनों औरतें भी चली गईं। सबसे पीछे अधेड़ औरत थी।

स्टेज पर 'आर्केस्टा' की धुन पर गायिका बंगला गीत गाने लगी तो मित्र ने मुझसे पूछा—"तुम बंगला समझ लेते हो?"

"मैं पच्चीस साल से कलकत्ता में रहता हूँ। बंगला में ही पहले कुछ कविताएँ लिखनी शुरू की थीं फिर सोचा, दूसरों की भाषा पर अतिक्रमण करना ठीक नहीं। इसलिए छोड़ दिया। मैं बंगला साहित्य और यहाँ की लड़कियों की हँसी से बेहद प्यार करता हूँ।"

वह गम्भीर हो उठा। सिगरेट का एक गहरा कश लिया। दूर देखते हुए बोला—"बंगाल की हँसी तो तुम्हें अच्छी लगेगी ही क्योंकि यहाँ पीड़ा अधिक है। दुख-दर्द अधिक है। गरीबी और संघर्ष अधिक है। काले बादलों के बीच सफेद बदली का दीख जाना भला किसे प्रिय नहीं लगेगा। लेकिन यहाँ की लड़कियों से सावधान रहना। वे बड़ी घमण्डी और स्वार्थी होती हैं। औरतों से तो भगवान बचाए। वे जूड़े में खोंसे हुए बेला के फूल, कालीघाट के चुटकी-भर सिन्दूर और शंख चूड़ियों में पति ही क्या,

सारे त्रैलोक्य को समेट लेना चाहती हैं। उनका वश चलता तो पीठ पर पारदर्शी थैले में अपने पति को सदा लादे रहतीं। बस, समयानुसार उससे काम चलातीं। बन्धु! यहाँ की लड़कियों और औरतों से होशियार रहना। उनकी हँसी और आँसू, उनके प्यार, भालोवासा और घृणा से।

"यहाँ की औरतों को क्यों बदनाम करते हो? भारतीय नारी की यही चारित्रिक विशेषता है कि उसे अपने घर-आँगन से अधिक मोह होता है।"

"यदि औरतों के बारे में यही तुम्हारी समझ है तो तुम औरतों के बारे में बहुत कम जानते हो।" उसने पुनः मुझ पर प्रहार किया।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने एक घूँट पीने के बाद कहा—"औरत एक अनजान पहेली है। उसके पास बैठो, बातें करो, प्रेम करो—यहाँ तक तो ठीक-ठीक चलता है। पर इसके बाद एकदम 'आब्सट्रैक्ट'। हँसी, आँसू बन जाते हैं। प्रेम, घृणा बन जाता है। मनुहार, लोभ का रूप धारण कर लेता है। अच्छे कपड़े, अच्छे-से-अच्छे कीमती आभूषण, अच्छी जिन्दगी, अच्छे बच्चे की लालसा में दिमाग और शरीर फैलने लगता है।"

"यह तो औरतों की स्वाभाविक और शारीरिक विशेषताएँ हैं। जो बातें प्रकृतिजन्य हैं, उनके साथ हम बिनार्थ फिलसफा नहीं जोड़ सकते।"

मेरी बात से वह तिलमिला उठा। मेज पर एक घूँसा मारा। मेज पर रखे गिलास, सोडा वाटर की बोतलें, बीयर की खाली बोतलें काँप उठीं। मुझे उसकी हरकत से आश्चर्य हुआ। मन-ही-मन सोचा, शायद नशा उस पर हावी होने लगा है।

"बिनार्थ फिलसफा! कभी सोचा है तुमने? कोई भी फिललफा बिनार्थ नहीं होता और बिनार्थ भी बिनार्थ नहीं होता।"

"देखो, यह व्यर्थ का तर्क है। तर्क के लिए तर्क मुझे पसन्द नहीं।"

"तो तुम्हें क्या पसन्द है, बंगाली लड़कियों की स्निग्ध सुमधुर हँसी!"

"तुम हद से ज्यादा बोल रहे हो।"

"हद क्या होती है मियाँ?"

"तुम गलीज क़िस्म के आदमी लगते हो। अच्छा हो मैं तुमसे बातें न करूँ। क्या नासमझी है। जान न पहचान, मैं तेरा मेहमान। नानसेंस!"

"देखो, तुम मुझे गाली मत दो!"

"यू शट अप…।" मैंने उठकर उसका कालर पकड़ लिया। गुस्से से दिमाग तन गया। तभी अचानक ही उसने मुझे एक घूँसा मारा। घूँसा मेरी नाक पर लगा था। मैं अपनी नाक सहलाने लगा। नाक सहलाते हुए ही मैंने अपने दाएँ-बाएँ देखा। होटल की टेबुलों की आँखें हम पर आकर टिकी थीं। मैंने उसका कालर छोड़ दिया। बैठते हुए बोला—"आखिर तुम चाहते क्या हो? हंगामा खड़ा करना चाहते हो?"

"मैं इससे अधिक कुछ भी नहीं चाहता कि तुम्हारे साथ बैठकर दो-चार बातें करूँ। मैं तुम्हें एक लेखक मानता हूँ। और तुम शायद मुझसे नफ़रत करते हो। मेरे साथ दो-चार पल बैठ नहीं सकते। प्लीज! माफ करना।"

"मैंने साथ बैठने के लिए तुम्हें बुलाया नहीं।"

"मैं नहीं जानता यह टेबुल तुमने रिजर्व कराई है।"

रिजर्व शब्द पर उसने जोर दिया। इससे मेरा पारा और चढ़ गया।

"टेबुल रिजर्व न भी हो तो इससे क्या अन्तर पड़ता है! तुम इसी क्षण यहाँ से चले जाओ। यू आर ए स्टुपिड फेलो। (तुम असभ्य व्यक्ति हो)।"

अब तक स्टुआर्ट, बैरे आकर हमारे चारों ओर खड़े हो गए थे। छोटा-सा सीन क्रियेट हो गया।

उसने अपना कालर ठीक करते हुए कहा—"मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा और यदि तुम चाहते हो कि मैं बातें न करूँ तो दूसरी बात है।"

"हाँ, मैं चाहता हूँ कि तुम मुझसे बिल्कुल बातें मत करो और जिस टेबुल पर मैं बैठा रहूँ, भविष्य में वहाँ कभी मत आना।"

अर्थपूर्ण व्यंग्य मुस्कान में उसके होंठ फैल गए। उसने एक साँस में गिलास समाप्त किया। सिगरेट जलाकर गहरा कश लेता हुआ कुर्सी पर पीछे की ओर उटग गया। मैंने अपना गिलास उठाया। एक घूंट 'बीयर' सिप की। सिगरेट की पैकेट खोलकर सिगरेट निकाली और होठों के बीच रख ली। माचिस खोला तो उसमें तीलियाँ ही नहीं थीं। वेटर को आवाज देकर बुलाता कि इसके पहले ही वह अपनी पाकेट से लाइटर निकालकर जलाते हुए मेरी ओर झुक गया और मेरी सिगरेट जलाने लगा। मैंने मना

नहीं किया। हालाँकि मन में अभी भी उसके प्रति आक्रोश उफान भर रहा था। मुझे लगा कि इस घटना पर उसके मन में पश्चात्ताप होगा तभी इस प्रकार से आत्मीयता दर्शा रहा है। वह अपनी आँखें टेबुल के एक कोने पर टिकाए कुछ सोच रहा था। अब तक मैं यही अनुभव करता रहा कि उसके चेहरे की बनावट ही कुछ ऐसी है कि गम्भीर होने पर उसका चेहरा बेचारगी से भर जाता है और हल्के मूड से चेहरा खिला हुआ लगता है। आँखों में चमक होती। विचारों के फैलाव में वह भटकने लगता है। और जब उसे यह लगता है कि उसने विचारों की रेस में बाजी जीत ली है तो पूरे चेहरे पर प्रसन्नता की चमक फैल जाती है। मुझे यह भी लगा कि इस प्रकार के लोग क्षणिक उत्तेजना में अपने पर काबू नहीं रख पाते। अहम् की इमारत की एक ईंट खिसकते हुए देखकर उनका मूड बिगड़ने लगता है। उस क्षण आचार विचार-नियंत्रण के दायरे से दूर हो जाते हैं और ऐसे अवसर पर इस तरह के लोग कुछ भी कर सकते हैं। गाली-गलौज से लेकर मारपीट तक, हत्या से लेकर आत्महत्या तक। स्वाभाविक मानसिक तनावों के कारण अथवा यौन-विकारों से ग्रस्त ग्रन्थि-दोष के कारण भी ऐसा होता है। पर समाज में इस प्रकार के लोगों की कमी नहीं बल्कि यूँ कहूँ कि ऐसे लोग बहुतायत से हैं। विशेषकर बौद्धिक वर्ग में। जीवन में भोगी गई यंत्रणाओं, अभावग्रस्त जीवन से उत्पन्न असमर्थताओं और महात्वाकांक्षा की असफलताओं के कारण भी इस तरह की कुंठाग्रस्त मन:स्थिति होती है, जिसके बीच वह जीवन के संकट-बोध को असहाय-सा महसूसता रहता है। कभी-कभी उसकी मस्तिष्क की गठरी में भरे विचारों को जब कोई देखने-परखने लगता है या ऐसी स्थितियाँ आती हैं जहाँ उसकी गठरी से विचारों के चिथड़े अपने-आप बाहर निकलने लगते हैं, तब उसका आहत मन, विचार-विमर्श के आईने में अपना चेहरा देखता हुआ राहत महसूस करता है अथवा भयंकर तनावों के बीच घिर जाता है।"

मैंने उड़ती हुई निगाह से उसके चेहरे को पढ़ने की कोशिश की। वह अपने विचारों में डूबा था। उसके चेहरे पर से फिसलती हुई मेरी दृष्टि दूर टेबुल पर बैठे जोड़े पर गई। औरत बहक-चहक कर बातें कर रही थी

और पुरुष मौन भाव से स्त्री के चेहरे पर आँखें धँसाए उसकी बातें सुन रहा था। दोनों के सामने बीयर से भरे गिलास रखे थे। 'बार' के मुख्य दरवाजे से चार यूरोपियन युवकों के साथ अधेड़ उम्र की भारतीय महिला आकर बीच वाली मेज के इर्द-गिर्द बैठ गई। दरवाजे से अन्दर आता देख कर दो स्टुआर्ट भागे हुए उनकी अगवानी करने चले गए थे।

"देखा ? विदेशी चले गए पर दास छोड़ गए। हाय रे देश ! यहाँ पर ऐसे दासत्व-भाव वाले लोगों को अपने पीछे एक पूँछ लगा लेनी चाहिए। और पीठ पर या पेट पर एक नारा चिपका लेना चाहिए—दुमदार देश !! दुमदार लोग !!"

मैं चुप रहा। कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। संभवतः मेरे मौन से वह चिढ़ गया। 'वेटर !' 'वेटर !' उसने जोरों से आवाज दी। 'वेटर' के आ जाने पर व्यंग्यात्मक लहजे से बोला—"यार, इस खाकसार की भी कुछ सुन लिया करो।" 'वेटर' के 'जी हजूर !' 'क्या लायें साहब ?' कहने पर वह आवेश में आ गया। "क्या लाएँ ? अभी तक मैं क्या पी रहा था ? मैं कोई नया मुसाफिर नहीं। जो पीता था, वही पिऊँगा। वही लाओ। जाओ। जरा जल्दी। और हाँ, साथ में कुछ खाने को भी। पहले खाने का मेनू दे जाओ।"

बैरा उसके हाथ में खाने का मेनू थमा गया। उसे उलटते-पुलटते एक पृष्ठ पर ठहरकर धीमे स्वर में पढ़ता रहा—'चिकेन बिरियानी', 'चिकेन कटलेट, 'चिकेन पकौड़ा', 'चिकेन चाप', 'चिकेन भर्ता', 'चिकेन कोरमा', 'मुर्ग मुसल्लम', 'चिकेन फ्राई', 'चिकेन कढ़ी', 'चिकेन मसाला', 'चिली चिकेन', 'मटन रोगन भर्ता।' मटन नहीं चलेगा। 'न्यू इयर्स इव' पर चिकेन की टाँग छोड़कर बकरे की दाढ़ी भला कौन पकड़ेगा।' उसने 'मैनू' टेबुल पर रख दिया। दोनों अँगुलियों से टेबुल पर तबला बजाने लगा। फिर यकायक बोल उठा—"बकरे की दाढ़ी। अम्लान चटर्जी की बाड़ी। बनारसी साड़ी। भूतनाथ की ताड़ी। जय जय बम भोला। भंग का गोला।"

मुझे यकायक हँसी आ गई। दूर टेबुल पर अम्लान चटर्जी अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था और सामने बैठी बनारसी साड़ी पहने नायिका की

ओर ललचाई नजरों से ताक रहा था। नायिका कोई लतीफा सुनाने जैसे मूड में चहक रही थी।

मुझे हँसता देखकर उसने हल्का महसूस किया। दूसरे ही क्षण उसने मुझसे पूछा—"कुछ खाओगे ? यदि बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। देखो मैंने शायद तुम्हें कष्ट दिया। मिजाज खराब किया। मेरी ओर से एक पैग लो, प्लीज !"

"नहीं, धन्यवाद।"

"यह तुम्हारी जिद्द है।" वह हताश होते हुए बोला। फिर बैरे को बुलाया। बैरे के आने पर दोबारा मुझसे पूछा—"कुछ खा तो सकते हो ? दारू और दारा से खाली पेट दोस्ती तन्दुरुस्ती के लिए खराब होती है।"

मैं चुप रहा।

उसने बैरे को आर्डर देते हुए कहा—"दो प्लेट चिकेन बिरियानी,··· नहीं एक चिकेन, एक विजीटेबुल बिरियानी। साहब शाकाहारी हैं।"

मैंने कहा—"नहीं, मेरे लिए मत मँगाओ। मैं इतना खाकर यहाँ बैठ नहीं पाऊँगा। मैं होटल में कभी-कभी पी लेता हूँ पर खाता घर पर हूँ।"

"तो सोने का इन्तजाम भी हो जायगा। वेटर ! एक प्लेट वेजिटेबुल पकौड़ा और एक प्लेट चिली चिकेन, बोनलेस। बिना हड्डी। हड्डी रहने से तुम्हें ही खिलाऊँगा।"

"नहीं साब, हड्डी नहीं रहेगी।" बैरा मुस्करा दिया।

"और मुर्गी-मांस ही रहे, मुर्गा नहीं।"

बैरा इस बात से नाराज हो गया। 'मैनू कार्ड' उठाया। रूमाल से मेज पोंछा और चलने लगा तो उसने फिर बैरे से कहा—"चिकेन अच्छा होना चाहिए। गर्म और बढ़िया। टाँगें न हों तो सीना। जरा जल्दी।"

बैरा चला गया तो मुझसे पूछा—"तुम कोठे पर जाते हो ? देखो बुरा मत मानना। मैंने इसलिए पूछा कि इस विषय पर लोग सहम जाते हैं, सकुचा जाते हैं, नाक-भौं सिकोड़ते हैं। लेकिन यही वह ऐसा मर्मस्थल है, जिसकी चर्चा करने से व्यक्ति के धर्म-संस्कार, विचार, जीवन-संदर्भ और व्यक्तिगत जीवन के बारे में जाना जाता है। परन्तु उसी जगह को चरित्रवान कहने-कहलाने वाला भद्र समाज गन्दी जगह कहता है। 'रैड लाइट

लोकल्टी' यानी 'लाल बत्ती का मुहल्ला'।"

मुझे लगा कि वह फिर धीरे-धीरे मुझ पर हावी होने लगा है। मुझ पर आघात करने के लिए वार कर रहा है। मैं उसकी बातों से उकताने लगा। फिर भी जिन विषयों और समस्याओं के बारे में वह अपना अभिमत प्रकट कर रहा था, उससे मेरे विचार लगभग एक-से थे और कुछ बातों पर मत-भेद होना स्वाभाविक है क्योंकि हर आदमी दूसरे आदमी से भिन्न प्रकार से सोचता है, भले ही निष्कर्ष एक हों। संभवतः यह अन्तर उनके अपने जीवन में भोगी या अनुभव की गई सच्चाई के विभिन्न पहलुओं के अन्तर के कारण है। यह व्यक्ति जो मेरे सामने बैठा है, उसके और मेरे विचारों में समानता देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछना चाहा—'तुमने मनो-विज्ञान और राजनीति की कहाँ तक पढ़ाई की है?' फिर सोचा, किसी से उसकी पढ़ाई या डिग्री के बारे में पूछना हल्कापन लगता है। हो सकता है उसने कोई डिग्री ही नहीं ली हो। बीच में पढ़ाई छोड़ दी हो या आर्थिक परेशानियों के कारण छोड़ना पड़ा हो। ऐसी स्थिति में डिग्री के बारे के पूछे जाने पर वह हीन भावना से ग्रसित होकर संभवतः कुछ भी न बोल सके या अन्दर-ही-अन्दर अपमान बोध महसूस करे। किसी के व्यक्ति-गत जीवन के बारे में सब कुछ या कुछ भी जान लेने की नीयत से जो भी प्रश्न पूछे जाते हैं मुझे लगता है पूछने वाला काफी घटिया किस्म का व्यक्ति होता है अथवा उसके विचारों में परिपक्वता नहीं आई होती। बौद्धिक समाज में इण्टेलेक्चुअल को साधारण जीवन तथा चिन्तन के आईने में ही देखा-परखा जाना चाहिए। मुझे मौन देखकर उसने कहा और उसकी बात से मैं चौंक उठा—

"कोठे वाली बात से तुम्हारे संस्कार, लगता है, जाग उठे।"

मैंने कहा—"कोठे पर जाना कोई पाप नहीं है?"

"प्यारे बन्धु! पाप-पुण्य में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं। सिर्फ आदमी के उत्थान-पतन में है और वह भी जीने के लिए। अस्तित्व के बचाव के लिए संघर्ष करने में। वेश्या की जाँघों के कुछ ही ऊपर उसकी अपनी अस्मिता और एक पेट होता है। अस्मिता के लिए, पेट के लिए उसे गलीच काम करने पड़ते हैं। मनुष्य के अस्तित्व की लड़ाई में वह भी हमारे

बराबर है। तभी तो दुर्गा-पूजा में वेश्या-द्वार की मिट्टी को पवित्र माना जाता है। उससे देवी का महास्नान किया जाता है।"

"पेट के लिए असमर्थता के कारण ही वह वेश्या बनती है। असमर्थता मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है फिर भी निष्क्रिय होकर असमर्थता स्वीकार करना और संघर्ष करते हुए असमर्थ हो उठना अलग-अलग स्थितियाँ हैं।"

"इन स्थितियों के लिए कौन जिम्मेदार है ? व्यक्ति या समाज, या कानून या इन तीनों के तालमेल से सर्जित कुत्सित काम-पिपासा ?"

"समाज में पुरुष और स्त्री के बीच बिखरते सम्बन्धों और विषम आर्थिक समस्याओं के कारण ऐसा होता है। कुछ ने देह-व्यापार को धन्धे के रूप में अपना लिया। इसमें भी पुरुष ही अधिक सक्रिय होता है।"

"शायद तुम ठीक कहते हो। इसके लिए पुरुष ही अधिक जिम्मेदार है। कानून का रक्षक भी तो पुरुष ही होता है। इसीलिए मैं सोच रहा था कि तुम लेखक हो। आम आदमी के बीच के आदमी। 'वेश्यालय' जरूर जाते होगे।"

उसका यह वार मैं सहन नहीं कर सका। प्रायः चीखते हुए कहा—"लेखक के लिए वेश्यालय जाना कोई जरूरी है क्या ? जो नहीं जाते वे अच्छे लेखक नहीं हैं ? तुम व्यर्थ की बकवास मत करो।"

"मैं व्यर्थ की बकवास नहीं करता। सच्ची बात कड़वी लगती है। वैसे तुम न बताना चाहो तो मैं जोर नहीं दूंगा। फिर भी वेश्यालय के बारे में तुमसे ज्यादा मुझे ज्ञान है। मैंने वेश्यालय में ही अच्छी बातें सोची हैं।"

मेरे मौन से वह चिढ़ गया। उसने अपनी बातों के ताने-बाने को जोड़ते हुए कहा—

"तुम जानते हो कलकत्ते की सड़कों पर अस्सी हजार भद्र मध्यवर्ग की पढ़ी-लिखी, अच्छी, सुन्दर, बुद्धिमान लड़कियाँ घूमती हैं, धन्धा करती हैं। विक्टोरिया के मैदान में, हुगली लेक के किनारे या रेस्ट्राँ, बार, होटलों की कैबिनों में, प्राइवेट फ्लैट्स में, रिक्शों-टैक्सियों और घोड़ागाड़ी के अन्दर। इस प्रकार के जीवन के लिए पारिवारिक बिखराव, गरीबी,

वेकारी, सामिजिक उपेक्षा, अतृप्त शारीरिक सम्बन्ध ही मुख्य कारण रहे हैं। इसी तरह की एक लड़की से मेरी मुलाकात 'उत्तरपाड़ा' रेलवे स्टेशन पर हुई थी। आज से ग्यारह साल पहले लोकल ट्रेन से मैं 'हिन्द मोटर्स' से लौट रहा था। शाम के साढ़े चार बजे थे।

"कहाँ जायेंगे?" एक अपरिचित लड़की की आवाज से मैं चौंक गया। वह मेरे करीब ही खड़ी थी। स्वस्थ, सुन्दर, सौम्य।

"हावड़ा," मेरे कहने पर वह मुस्करा उठी।

"क्या टाइम है?"

"साढ़े चार।"

"एक घन्टे से प्रतीक्षा कर रही हूँ, ट्रेन का पता नहीं। रास्ते में कोई गण्डोगोल (वड़बड़ी) हुई होगी। कल 'हिन्द मोटर' में एक आदमी ट्रेन से कटकर मर गया था।"

"आप कैसे जानती हैं?"

"मेरे पड़ोस में ही रहता था। वेकार था।"

"वह कोई काम कर सकता था। इस तरह के अकर्मण्य लोग···"

वह बीच में मेरी बात को काटते हुए बोली—"देखिये! उसे अकर्मण्य मत कहिये। वह बहुत अच्छा लड़का था। महत्त्वाकांक्षी। इन्टेलीजेन्ट। यादवपुर यूनिवर्सिटी में बी॰ एस-सी॰ फाईनेल में था।" कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू भर आए। मुझे लगा कि वह इस घटना से आहत हो गई है। मेरी सहानुभूति उसके साथ हो गई। ट्रेन आती दिखी। उसने कन्धे से टँगा बैग खोलकर रूमाल निकालकर चेहरा पोंछा और रूमाल को बैग के अन्दर रख लिया।

ट्रेन के जिस डिब्बे में मैं चढ़ा उसी में वह भी मेरे समीप सीट पर बैठ गई। रास्ते में उसने मुझसे पूछा—"आप क्या करते हैं?"

"एक अखबार में रिपोर्टर हूँ।"

"यानी आप पत्रकार हैं।" कह कर हँस पड़ी। हालाँकि उसके हँसने का कोई कारण नहीं था। फिर मेरे पूछने पर कि आप क्या करती हैं, उसने मुस्कराकर मेरी ओर देखकर कहा—"एक आफिस में।"

"किस आफिस में?"

मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर उसने मुझसे पूछा—"शादी हुई है ?"

"नहीं। अभी नहीं। मैं शादी के मामले में दकियानूस हूँ। कोई इरादा नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि कुछ सोच नहीं पाता, क्या करूँगा परिवार सजाकर।"

"आप बड़े दिलचस्प आदमी हैं। कलकत्ते में कहाँ रहते हैं ?"

"शामबाजर।"

"शामबाजर, कहाँ ?"

"राजा मनीन्द्रराय स्ट्रीट में। और आप ?"

"आप तो मुझसे उम्र में बड़े हैं। मुझे तुम ही कहिए न।"

मैंने ध्यान से उसे देखा और उसे देखते समय कम्पार्टमेंट में नजर फैल गई। कोई खास भीड़ न थी। मुझे उसकी ओर देखते हुए सिवाय उस लड़की के कोई दूसरा नहीं देख रहा था। वह बीस-बाईस वर्ष की थी। रंग गेहुँआ। चेहरा गोल। पतले होंठ। बड़ी-बड़ी आँखें। मुझे अपनी ओर ताकते हुए देखकर वह बोली—"क्या देख रहे हैं इस तरह ?"

"तुम्हारी उम्र क्या होगी ?"

"अठारह।"

मैंने मन-ही-मन भाँप लिया कि यह अपनी उम्र छिपा रही है। चार-पाँच साल छोटी हो गई है।

"पढ़ा कहाँ तक है ?"

"बी० ए० में थी। आगे पढ़ न सकी। पिताजी की नौकरी छूट गई। वे क्लाइव मील में काम करते थे। यूनियनबाजी का शौक था। इसी से नौकरी से हटा दिए गए।"

"पर यूनियनबाजी करने वालों को तो मालिकों द्वारा इज्जत मिलती है। तनख्वाह के साथ ऊपर का भत्ता भी मिलता है।"

"हाँ मिलता होगा पर पिताजी को चोरी के झूठे जुर्म में फँसाकर दूसरी युनियन के नेता ने मालिकों से शिकायत कर दी। पिताजी की यूनियन से मालिक लोग घबड़ाते थे इसलिए अपने स्वार्थों के लिए एक दूसरी यूनियन बनवा दी और पिताजी के खिलाफ इस तरह का झूठा

प्रचार किया गया कि यूनियन ने पिताजी का साथ नहीं दिया। यानी पिताजी को दूसरी यूनियन के नेताओं ने परास्त कर दिया। मजदूरों के लिए पिताजी द्वारा की गई अच्छाइयों के ऊपर बुराई का लेबल लगा दिया गया। पिताजी सीधे-सादे आदमी थे। मालिकों ने एक कागज पर हस्ताक्षर करा लिया। मिल के कुछ सामान की चोरी के झूठे अपराध में वे पकड़े गए। कागज पर हस्ताक्षर नहीं करते तो मालिक लोग उन्हें पुलिस में पकड़ा देते। पिताजी ने चुपचाप हस्ताक्षर कर दिया और उसी दिन उन्हें नौकरी से भी हटा दिया गया।"

हावड़ा स्टेशन आ गया। दोनों अण्डरग्राउण्ड रास्ते से निकल कर बस स्टैण्ड पर आकर खड़े हो गए। मैंने देखा उसके मुँह पर चिन्ता की रेखाएँ बहुत गहरी होकर फैल गई हैं। मैंने पूछा—"कहाँ जाएंगी ?"

उसने मुस्कराकर मुझसे प्रश्न किया—"आप कहाँ जाएँगे ?"

"मैं प्रेस क्लब जाऊँगा। एक प्रेस कान्फ्रेन्स में, उसके बाद घर।" वह दो कदम और चलकर मेरे नज़दीक खड़ी हो गई। बड़ी-बड़ी आँखें मेरे चेहरे पर टिकाते हुए बोली—"आपके साथ अच्छा लग रहा है। थोड़ी देर के लिए कहीं बैठकर बातें करती।"

"कहाँ चलें ?"

मेरी धड़कनें काफी तेज चलने लगी थीं। शरीर रोमांचित हो रहा था।

"विक्टोरिया चलें। खुली हवा में।" मेरे पूछने पर उसने कहा—"ना, विक्टोरिया नहीं। धर्मतल्ला के किसी रेस्टोरेन्ट में।"

"तुम्हें मालूम है कौन-सी अच्छी जगह है ?"

" 'कार्को' चलें अच्छी जगह है। केबिन भी हैं। बैरा लोग बहुत अच्छे हैं। सहयोग करते हैं।"

"ठीक है।" मुँह से निकल तो गया पर बैरे लोगों के सहयोग करने वाली बात पर कुछ देर तक सोचता रहा।

उसने पर्स खोलकर कुछ देखा और बन्द करते हुए कहा—"ओह ! एकदम भूल गई। पैसा ही नहीं लाई। पिताजी के लिए दवा खरीदनी है। डाक्टर की स्लिप रख ली और पैसे भूल गई। कैसी बेवकूफ हूँ !"

"क्या हुआ है पिताजी को ?"

"मलेरिया है। बिस्तर से उठ नहीं पाते। माँ भी दमा से बीमार रहती हैं। छोटी बहन स्कूल जाती है। उसे स्कूल भेजकर, घर का सारा काम-काज कर, खाना बनाकर तब मैं निकल पाती हूँ। आज देरी हो गई थी। आफिस नहीं गई। बहुत अच्छा लग रहा है आपके साथ।" उसने मेरी बाँह छूते हुए कहा—"बस आ गई चलें।"

मैं पता नहीं कहाँ खोया हुआ था। सामने ही पाँच नम्बर 'डबलडेकर' बस आकर खड़ी हो गई थी। नीचे बैठने लगे तो उसने कहा, "नहीं, ऊपर चलते हैं। 'डबलडेकर' में ऊपर बैठना मुझे अच्छा लगता है।"

हम दोनों डबलडेकर में चढ़कर सामने वाली सीट पर बैठ गए। उसने कहा—"क्यों, अच्छा नहीं लग रहा है ? यहाँ से पूरा शहर ठीक-ठीक दिखाई देता है।" मुझे चुप देख मेरी अँगुलियाँ छूते हुए बोली—"कुछ बोलिए न। अच्छा, घर में और कौन-कौन हैं ?"

"अकेला ही हूँ अभी।"

"मुझे ले चलेंगे अपने घर ?"

इतनी सहजता से उसने इतनी बड़ी बात कह दी कि मुझे आश्चर्य हुआ।

"अगर मैं तुम्हें वहाँ बन्दी बना लूँ या खा जाऊँ तो ?"

"बाप रे ! आप इतने भुक्खड़ आदमी हैं !" कहते हुए वह हँस पड़ी। फिर बोली—"अच्छा यह बताइए, मैं दवाइयाँ कैसे खरीदूँगी ? पैसे तो नहीं हैं।"

"कितने की आएँगी ?"

"पता नहीं। फिर भी बीस-पच्चीस रुपये से काम चल जायेगा।"

मैं अन्दर-ही-अन्दर सोचने लगा। दवाइयाँ खरीदेगी या काम चलाएगी। खैर इसे बीस रुपये दे दूँगा। परन्तु रेस्ट्राँ का खर्च ? कुल मिलाकर पैंतीस रुपये की हत्या होगी। पाकेट में रखे रुपयों को मैं मन-ही-मन गिनने लगा। लगभग बयालीस रुपये बचे थे। एक दिन पहले ही 'सामुख पत्रिका' से मेरी रचना का पारिश्रमिक पचास रुपये मिला था। मेरे मुँह से निकल गया—"अच्छा दवाइयाँ ले लेना। खरीद दूँगा।"

वह खुश हो गई और आँखों में कृतज्ञता भरे हुए बोली—"आप बहुत अच्छे आदमी हैं। क्या नाम है आपका ?"

मैंने झूठ बोल दिया—"निरंजन आचार्य।"

"और आपका नाम ?"

"काजल चटर्जी।"

"आँखों का काजल या मन का ?"

वह हँस पड़ी। हँसते हुए ही बोली—"आपको क्या लगता है ?"

"कजरारी आँखों का काजल। बना देते हैं पागल।"

"वाह ! आप कविता भी लिखते हैं ?"

"कविता ही नहीं लिखता। बस संवाद या कभी-कभी कोई निबन्ध।"

"कविता की कोई किताब मुझे दीजिए न। मैं उस पर धुन बनाऊँगी। मैं भी रवीन्द्र संगीत गाती हूँ।"

धर्मतल्ला के बस स्टाप पर उतर कर हम 'कार्को' रेस्ट्राँ में ऊपरी तल्ले की 'केबिन' में जाकर बैठ गए। बैरे ने केबिन का पर्दा बन्द किया। अन्दर आया। मीनू हाथ में थमाकर बाहर चला गया। फिर दो गिलास पानी लेकर आया—"जी साहब !" मैंने काजल से पूछा—"क्या लोगी ?" उसने कहा—"मटनकरी। मोगलाई परोठा।" मैंने अपने लिए सिर्फ चाय का आर्डर दिया तो वह बैरा को रोकते हुए बोली—"सुनो, साहब के लिए भी यही···।"

मैंने रोक दिया—"ना, मैं कुछ नहीं खाऊँगा। प्रेस कान्फ्रेंस में जाना है। खाद्य मंत्री आ रहे हैं। वहीं खाना-पीना है।"

बैरा चला गया तो उसने कहा—"अच्छा, दवाइयों का पैसा आप दे दीजिए, नहीं तो भूल जायेंगे। पत्रकारों, लेखकों का क्या विश्वास !" मैं पाकेट से रुपये निकालकर गिनने लगा तो वह मेरे हाथ से सारा रुपया छपाक से छीनते हुए बोली—"इत्ता रुपया ! आप तो बड़े आदमी हैं।"

सारे रुपये लेकर पर्स में रखने लगी, फिर गिनकर तीस रुपए पर्स में रखकर बाकी मुझे वापस लौटाते हुए बोली—"इतने से हो जायगा।" उसकी स्थिति के बारे में समझते हुए मैंने विरोध नहीं किया। बैरा खाने का सामान और चाय लेकर आ गया। प्लेटें टेबुल पर सजाते हुए हम

दोनों पर नजर डालता रहा। फिर जाते हुए केबिन का पर्दा ठीक से बन्द कर दिया। काजल खाने में लग गई जैसे बेतरह भूखी हो। मैं चाय की चुस्की लेने लगा। मेरे चाय पीने के पहले ही वह मोगलाई परोठे और मटनकरी समाप्त कर बोली—"ओफ, मटन बहुत तीता था। बाप रे !"

मैंने पूछा—"चाय पियोगी ?"

"ना, मैं चाय नहीं पीती। कोल्ड ड्रिंक्स पी लेती हूँ।"

"तो कोल्ड डिक्स ले लो।"

"अच्छा। पी लूँगी।"

मैंने वेटर को बुलाया और एक ठण्डा 'औरेन्ज' लाने के लिए कह दिया। वह मेरे करीब खिसक आई। मेरा हाथ सहलाते हुए बोली—"आपके साथ बहुत अच्छा लग रहा है।"

मेरे मन में उसे छूने, उसे प्यार करने की इच्छाएँ मन के निरभ्र आकाश में भटकते मेघ की तरह दौड़ रही थीं परन्तु मुझे वह एक असहाय लड़की लगी।

'आरेन्ज' आ गया तो वह पाइप से 'सुर्र-सुर्र' पीने लगी। आधी बोतल खाली करने के बाद मुझसे पूछा—"क्या आप अपने कमरे में मुझे नहीं ले जायेंगे ? रेस्ट्राँ वगैरह में तो बस बैठा ही जा सकता है। ठीक से बातचीत नहीं होती।"

मैं आश्चर्यपूर्वक उसकी ओर देखने लगा। उसके प्रति मेरी सारी सहानुभूति एक-एक कपड़े उतारती जा रही थी। आवेशजनित आक्रोश में मैंने पूछा—

"इस तरह रोज कितना कमा लेती हो ?"

शायद वह मेरे आक्रोश को समझ गई। पर उस पर पर्दा डालते हुए बोली—"बीस-तीस। कभी-कभी पचास।"

"चलो यहाँ से चलते हैं।" मैं यकायक उठकर चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"क्यों, बैठेंगे नहीं ?" उसके कहने पर मैंने प्रतिवाद किया—

"नहीं। चलो उठो यहाँ से।"

वह आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से मुझे देख रही थी। हम दोनों रेस्ट्राँ से

बाहर आ गए। मेरे दिमाग में घिरते-घुमड़ते रोमानी मेघ लुप्त हो चुके थे। मेरा आक्रोश मुझे कचोट रहा था। तेजी के साथ पाँव बढ़ाता हुआ मैं सड़क पर चला जा रहा था। दोबारा इच्छा नहीं हुई कि मुड़कर उसकी ओर देखूँ। जैसे लग रहा था कि कुछ अप्रत्याशित-सा घटित हुआ है। कि मैंने एक लड़की को अपमानित करना चाहा, कि उस लड़की ने अपने छल-बल से मेरे तीस रुपए पिता की बीमारी का बहाना बना कर ऐंठ लिए और पन्द्रह रुपये का नाश्ता चाट गई। कि मेरे कमरे में वह जाना चाहती थी सो ले जा सकता था पर सोचा कि वह असमर्थ लड़की है कि हठात् मेरे ऊपर प्रेम में पागल हो उठी कि मुझे चाहने लगी कि उसके साथ घर जाकर देखना चाहिए था कि क्या सही-सही उसके पिता बीमार हैं या उसकी कोई बहन है जो पढ़ती है। कि वह स्वयं रवीन्द्र संगीत गाती है। कि वह काजल चटर्जी है या वंदना, अंजना, रेखा, माया, अपर्णा या कोई अन्य नामधारी है। आह, मनुष्य के उत्थान-पतन का कितना विचित्र महा-नगरीय नाटक है यह। तभी तो इस शहर में दूर-दूर गाँवों कस्बों से लड़कियाँ आकर धन्धा करती हैं और रात की 'लोकल' या दूरगामी बस पकड़ कर घर लौट जाती हैं। 'आफिस गई थी।' 'आफिस जाती है।' मुहल्ले में सभी जानते हैं। आफिस में काम करने की बात उनके धन्धे में झंडे का काम करता है।"

मैंने कहा—"ऐसा तो सभी शहरों में होता है। यह कोई नई बात नहीं।"

"हाँ, यह नई बात नहीं है। आर्थिक अभावों ने व्यक्ति और समाज को कहाँ से कहाँ ला पटका है।"

"बन्धु, यदि शहर न होता, रेस्ट्राँ न होते, रेस्ट्राँ की केबिनें, होटल, होटल के कमरे, सैलानी, मौजमस्ती करने वाले लोग न होते तो आर्थिक अभावों में फँसे परिवारों में जवान लड़कियाँ देह-व्यापार में संलग्न न होकर कोई भी छोटा-मोटा काम कर उससे अपना गुजारा कर सकती थीं। आदमी अपने अन्दर न झाँककर बाहर झाँकना अधिक पसन्द करता है और इसमें उसे सुख मिलता है। ये लड़कियाँ अपने चारित्रिक उत्थान की बातें सोच ही नहीं सकतीं क्योंकि बचपन से ही उन्हें जीवन में बहुत से संघर्ष झेलने पड़ते

हैं। सीधे-सादे ढंग से बिना किसी झंझट के देह-पिपासा और आर्थिक अभाव दोनों दूर हो जाते हैं। धीरे-धीरे मांसल जीवन की भोगवादी सभ्यता के साथ वे फिट हो जाती हैं और एक बार उससे बँध जाने पर उससे निस्तार पाना सम्भव नहीं होता।"

मुझे स्पष्ट लग रहा था कि मेरी बातों से वह आहत हो गया है। मैंने आत्मीयता से कहा—"तुम कुछ लो। तुम्हारा गिलास समाप्त हो चुका है।" इस पर सायास मुस्कान के साथ उसने कहा—"नहीं, थोड़ा रुक कर लूंगा। अभी तो तुम्हारा फिलसफा ही गले के नीचे उतार रहा हूँ।" कुछ क्षण की खामोशी के बाद उसने कहा—"देखो, यह घटना बारह साल पहले की है। उसके बाद उस लड़की के साथ मेरी दूसरी मुलाकात जानते हो कहाँ हुई?" वह यकायक चुप हो गया। सिगरेट के पैकेट से सिगरेट निकाल कर जलाया और धुएँ के बादल छोड़ते हुए गहरी सोच में डूब गया। मैंने देखा, उसके माथे की नसें काफी मोटी थीं। सोचते हुए जब वह सिगरेट का गहरा कश लेता है, तो माथे की नसें फूलती-सिकुड़ती रहती हैं। उस समय उसके सिगरेट पीने और सोचने के अन्दाज में बिल्कुल साम्य नहीं हो पाता। उसकी आँखें तेजी से नाचने लगती हैं। धुएँ के बादलों में उसका गम्भीर चेहरा डूब जाता है। फिर अचानक आँखें दूर किसी एक बिन्दु पर टिक जाती हैं और उसकी सोच चिन्ताग्रस्त होकर समूचे चेहरे पर छा जाती है। उदासी-जनित गम्भीरता के बीच उसने एक गहरा कश लिया और अनायास ही हाथ गिलास पर चला गया। मैंने दोबारा उससे कुछ नहीं कहा। उसी ने बैरे को आवाज देकर बुलाया।

"दो 'डबल' लाओ। हाँ एक सोडा।"

मैं दूर टेबुल पर बैठे जोड़े की ओर देख रहा था। औरत तेजी से बातें कर रही थी, और उसका साथी जिसके चेहरे पर मुर्दानगी छाई हुई थी, बैठा औरत की बातें मौन भाव से सिर झुकाए सुन रहा था। दोनों पी रहे थे। गिलासों में 'बीयर' ही थी तभी होटल के मुख्य द्वार से चार विदेशी जो यूरोपियन लग रहे थे और जिनके साथ एक अधेड़ भारतीय महिला थी, अन्दर घुसे। स्टुआर्ड ने उनकी अगवानी की। उन्हें ले जाकर बीच वाली बड़ी-सी टेबुल दे दी। मेरी दृष्टि उनसे हटकर अम्लान चटर्जी पर जा

टिकी। उसकी भव्य दाढ़ी और रोबीले चेहरे से लगता था वह फौज का कर्नल है। अत्यधिक नाटकीय ढंग से बातें कर रहा था। मैंने घड़ी देखी। दस बजकर चालीस मिनट। 'बार' लोगों से भर चुका था। कोई सीट खाली नहीं थी। फ्लोर पर 'डिस्को' धुन पर कुछ लोग नाच रहे थे, पर एक-दो जोड़ों को छोड़कर बाकी का नाचना हास्यास्पद-सा लग रहा था। कुछ देर तक यह क्रम चलता रहा। संगीत बन्द होते ही नाचते हुए कदम भी रुक गए। जोरों से तालियाँ बजीं। नाच में शरीक होने वाले जोड़े अपनी-अपनी सीटों पर जाकर बैठ गए।

बैरा अब तक उसके सामने दो गिलासों में 'डबल डायमण्ड' और सोडा खोलकर रख गया। वह सोडा की बोतल उठाकर गिलासों में बारी-बारी ढालने लगा। एक गिलास मेरी ओर बड़ी आत्मीयता से बढ़ाते हुए बोला—"लो! यह मेरी ओर से। नेवर माइण्ड सर। मेरी गलतियों के लिए और मिस काजल चटर्जी के लिए जो अब इस दुनिया में नहीं है। 'प्लीज़ हैव इट। डोन्ट से नो।' (कृपया ले लें, ना न कहें।)"

मुझे उसकी बातों से उसके प्रति हमदर्दी हो आई फिर भी मैंने उससे कह दिया—"मैं सिर्फ बीयर ही पीता हूँ। डोन्ट माइण्ड।"

"ओ०के० सर! अपनी-अपनी पसन्द। अपनी-अपनी तबीयत। अच्छा तो मेरी ओर से एक 'बीयर' ही लो।"

"अभी तो है। खत्म होने पर देखा जायगा। मैं यहाँ ज्यादा देर नहीं बैठूँगा।"

"क्यों? क्या किसी दूसरे बार में या किसी और भी अच्छी जगह···।"

"नहीं! ऐसी बात नहीं। 'बारों' का चक्कर लगाना मेरी आदत नहीं।"

"नये साल की शाम है। थोड़ी देर बैठो, तुम्हारे साथ अच्छा लग रहा है। भले ही तुम मुझसे बोर हो रहे हो। मैं कई दिनों के बाद इस बार में आया हूँ। यहाँ अकसर नहीं आता। मैं घर में पीना ज्यादा अच्छा समझता हूँ पर मेरी बीवी गिलास तोड़ देती है।"

उसने गिलास उठाकर मुँह से लगाया। आधा गिलास एक साँस में खाली कर दिया। मैंने लक्ष्य किया, उसके चेहरे पर तनाव और पीड़ा झलक रही

थी। उसने एक सिगरेट मेरी ओर बढ़ाते हुए हठात् हाथ खींच लिया—ओ, तुम्हारा ब्राण्ड तो दूसरा है। खैर, मैं कह रहा था, जो बीवी गिलास तोड़ देती है, वह कितनी पति-भक्त होगी। फिर भी मैं अपना पीने का गिलास किताबों की आलमारी में छुपाकर रख देता हूँ और जब किसी दोस्त के साथ या अकेले पीने बैठता हूँ, तो वह झगड़ा कर घर से बाहर चली जाती है। किसी सहेली के घर या ··खैर छोड़ो।" उसकी आवाज बीच में टूट गई। उसने एक लम्बा घूंट पिया और एक हाथ से सिर पकड़ लिया। कुछ क्षण शान्त सिर नीचा किए सोचता रहा और फिर कहने लगा—"औरत और फ्लैश वाले कमोड में कोई अन्तर नहीं। अब तुम्हीं बताओ, ऐसी औरत जिसे मेरा घर में पीना अखरता है, मेरी बीवी है। पवित्र हिन्दू गृहस्वामिनी। पर मैं उसको सुखी रखने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता रहता हूँ।"

मैंने कहा—"यदि ऐसी बात है तो तुम्हें अपनी बीवी के लिए अपने को बदल लेना चाहिए। मत पियो। उसकी इच्छाएँ पूरी करो। घर संसार बसाओ। सुखी रहो। घर की शान्ति से बढ़कर दुनिया में कहीं कोई शान्ति नहीं।"

"वाह !"—वह जोरों से हँस पड़ा—"तुम सनातनी लगते हो। उपदेश देना इस देश के हर आदमी का प्राचीनतम रोग है। सूरदास, कबीर से लेकर कबाड़ी तक, राजा भोज से लेकर गंगवा तेली तक।"

"तुम शायद जानते नहीं। राजा भोज अपने समय के सबसे बड़े इन्टेलेक्चुअल थे। औरत जाति का सम्मान करते थे। अपनी स्त्री को तो बेहद मानते थे। तुमने पढ़ा है वह किस्सा ?—एक बार उनकी पत्नी लीलावती रंग महल के कमरे में एक सहेली से बातें कर रही थी कि तभी राजा भोज अचानक ही कमरे में आ गए। उन्हें इस तरह बिना बताए आते देखकर उनकी पत्नी बोली—'कहो मूर्ख।' कितनी अपमानजनक बात थी। राजा भोज को बहुत गुस्सा आया। वे उल्टे पाँव वापस चले गए। रानी समझ गई, भोज काफी नाराज हैं। कुछ देर बाद सहेली के चले जाने पर लीलावती ने भोज को बुलावा भेजा। राजा भोज आए तो आवेश में उनका चेहरा तमतमा रहा था। पूछा—'तुमने मुझे मूर्ख क्यों कहा ? जिस भोज के दरबार में पंच रत्न हों, कालिदास जैसे कवि हों, उस भोज को तुमने मूर्ख

कहा !' रानी मुस्कराते हुए बोली—

'खादन्न गच्छामि । हसन्न जलपे ।
गतन्न सोचामि । कृतन्म मन्ने !
द्वाभ्यांम् तृतीयो न भवामि राजन् ।
किंकारणम् भोज भवामि मूर्खः ।'

(खाते हुए चलती नहीं, हँसते हुए बोलती नहीं, विगत के प्रति सोचती नहीं, दूसरों के उपकार का बदला नहीं चाहती । दो व्यक्ति जब बातचीत करते हों तो बीच में बोलती नहीं । अब हे राज भोज, आप ही बताएँ कि किस कारण से भला मैं मूर्ख बन सकती हूँ ।)

राजा भोज ने अपनी गलती मानते हुए पत्नी की कुशाग्रबुद्धि की प्रशंसा की । यही आचरण आज के पति-पत्नी भी अपना सकते हैं । यानी, एक-दूसरे को समझने और ईमानदारी के साथ व्यवहार करने की आस्था । अपने अहम् की केंचुल से बाहर निकलकर मानवीय रिश्तों के प्रति ईमानदार बनने का प्रयत्न ।"

उसका चेहरा आवेश से खिंच गया । मुझसे कहा—"तुम्हें मर्दों और औरतों के लिए 'उपदेश संहिता' लिखनी चाहिए । काफी बिकेगी । उपन्यास, कहानियाँ लिखने से कहीं अधिक ।" यह मेरे ऊपर फिर करारा आघात था । मुझे स्पष्ट लग रहा था कि व्यक्तिगत जिन्दगी में अपनी बीवी द्वारा गिलास तोड़े जाने और अपमानित होने के विरुद्ध उसके मन में जो नाराजगी, क्षोभ, आत्मग्लानि है, उसके प्रति मेरा कोई समर्थन न पाकर वह अन्दर ही अन्दर आहत हो उठा है । शायद इसीलिए वह मेरी कहानियों की तीखी आलोचना कर, मेरे साहित्य-कर्म को हल्का बनाने के उद्देश्य से प्रवचन-साहित्य लिखने का प्रस्ताव दे रहा है । मैंने कहा— "हमारे ऋषियों ने पुराण लिखे । पुराणों में व्यक्ति, धर्म और संस्कृति के उत्थान-पतन के साथ अपनी जमीन के साथ जुड़े रहने की सीख दी । आज हम साहित्य को जमीन से अलग नहीं रख सकते । कहने के तेवर बदल गए । भाषा, शिल्प बदले पर बात तो मनुष्य के बारे में ही कही जा रही है । हमारे आज के देवता मिलों, फैक्टरियों के मालिक, उद्योगपति, बड़े

नेता, मंत्री, स्मगलर, करोड़पति अथवा मठाधीश योगी हैं। उसका परिणाम भी दिखाई दे रहा है। चारों ओर झूठ, फरेब, बेईमानी, लोभ, हिंसा, नैतिक और चारित्रिक के आँसू···।"

उसने कहा—"मैं इतना काम्प्लीकेटेड एलीमेन्ट नहीं। तुम अपने चिन्तन के जाल में फँसाई गई उन तमाम सारी मछलियों की बातें कर रहे हो जिनको सच के अलावा कोई भी नाम दिया जा सकता है। मैं तो यथार्थ की बातें कर रहा हूँ। एक सीधी-सादी जिन्दगी का यथार्थ। जहाँ मैं एक अखबार का छोटा-सा पत्रकार और एक मेरी बीवी—मेरे पीने और जीने से ताल-मेल न लाने वाली, हाड़-मांस की पुतली। घर और स्वामी दोनों पर एकछत्र राज्य करना चाहती है।"

"तुम्हारी बातें सुनकर मुझे यही लग रहा है कि तुम अपनी इच्छा-नुसार जीने को ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मानते हो।"

"हाँ, शायद तुम ठीक कहते हो। पर यही मानवीय पहलू है।"

"मानवीय पहलू स्वेच्छाचारिता और घिसट-घिसटकर, रो-रोकर जीने में नहीं।"

"मैं अकेले तटस्थ जीवन जीने की बात सोचता हूँ, तो अच्छा लगता है। परन्तु सांसारिकता और चूल्हा-चक्की का झंझट आदमी को शादी के दरवाजे पर ला खड़ा कर देता है। औरत और अंडे देने वाली मुर्गी एक ही बात है। मैं जानता हूँ मेरी बीवी ठीक करती है। मैं पीने के लिए बहुत सारा रुपया उससे माँगता रहता हूँ। छीनता-झपटता हूँ। पीना मेरी व्यक्तिगत कमजोरी है। पति के रूप में पत्नी के साथ वैवाहिक सम्बन्धों के प्रति ईमानदार बनना एक दूसरा पहलू है। वहीं से मैं कटता जा रहा हूँ। मानवीयता से अमानवीयता की ओर आत्म-छलना के प्रबल प्रवाह में वहता जा रहा हूँ। मैं जानता हूँ मेरी बीवी ठीक करती है। उसे एक स्त्री-भक्त पति चाहिए। बच्चा चाहिए। सुखी घर संसार चाहिए। हम दो और हमारे दो। समय कहाँ भाग रहा है। देश जहान में क्या कुछ घटनाएँ घट रही हैं। इससे उसे कोई दिलचस्पी नहीं। मैं उसे सुख नहीं दे सकता। न ही दो प्राणियों वाले सिद्धान्त को ही अपना सकता हूँ। बच्चा होने के बाद शायद वह सुधर जाए। ईश्वर करे दुनिया की सारी औरतें

सुधर जाएँ। दुनिया की सारी औरतें भाड़ में जाएँ। देखो बन्धु ! दुनिया में अशान्ति का कारण औरतें ही हैं। क्लियोपेट्रा से लेकर···खैर छोड़ो।"

नशा उस पर हावी होने लगा था। इस हालत में ज्यादा देर तक 'बार' में उसके साथ बैठना मैंने ठीक नहीं समझा। फिर भी एक रहस्यमय जीवन के बारे में जानने की उत्सुकता मुझे वहाँ से खिसकने नहीं दे रही थी। मैंने उससे पूछा—"तुम्हारी शादी हुए कितने वर्ष हुए ?"

"यही कोई दो साल।"

"जल्दी बच्चे न भी हों तो कोई खास फर्क नहीं पड़ता।"

"फर्क तो दूसरे साल से ही महसूस कर रहा हूँ। शादी की दूसरी सालगिरह से। हालाँकि मैं सालगिरह मनाता नहीं। न शादी की, न जन्म-दिन की। जन्म के बारे में तो पता ही नहीं। ठीक-ठीक कौन-सी तिथि है। गाँव के स्कूल में जिस दिन पढ़ने गया था। हेड मास्टर ने उसी तिथि को जन्म-तिथि के रूप में रजिस्टर में लिख दिया। सर्टीफिकेट पर पाँच जनवरी या जाड़े की तिथि है और मेरी माँ कहती थी कि बेटा तू भादों की घुप्प अँधेरी रात में पैदा हुआ। अब कहाँ भादों और कहाँ माघ।"

"फिर भी हर आदमी को जन्म-दिन मनाना चाहिए। उससे तबीयत में बदलाव आता है। भले ही कुछ देर के लिए ही सही। आत्मीय सम्बन्ध बनते हैं। अड़ोस-पड़ोस, घर, परिवार अपनों के बीच अपने साल-दर-साल बीतते हुए जीवन के बारे में स्मरण किया जा सकता है। कुछ अच्छे भविष्य की कल्पना की जा सकती है।"

"मैं नहीं मानता। सम्बन्ध यदि सालगिरह से बनते हैं तो मैं रोज एक सालगिरह मनाऊँगा। और इसी तरह पूरे देश को अपने अभ्युदय की सालगिरह मनानी चाहिए। शायद इसी से राष्ट्रीय एकता कायम हो सके। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं। जो संभव है, वही मान्य होना चाहिए। कम से कम सम्बन्धों के बारे में। चाहे व्यक्तिगत हों, या राष्ट्रीय।"

"काजल भी कभी-कभी यही कहती थी। जो सहज ही प्राप्य है, उसे ही अपना लेना चाहिए। वही हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है। जरूरी है।"

"काफी समझदार लगती है। अब कहाँ है ?"

"अभी-अभी मैंने कहा था न कि वह अब इस दुनिया में नहीं है। जीने

के संघर्षों ने अपने दैत्य दाँतों से चबा डाला। मेरी शादी भी काजल को दिए गए वादों का, उसकी मेरे प्रति आस्था का परिणाम है।''

उसने दुखी मन से गिलास हाथ में लेकर ऊपर उठाया। 'काजल के लिए'—कहकर एक साँस में गिलास खाली कर दिया। मैंने उत्सुकतावश पूछा—''तुम्हारी शादी से काजल का क्या सम्बन्ध ?''

''बहुत गहरा सम्बन्ध है।'' वह कुछ देर तक खामोश रहा।

''तुम काजल से दोबारा मिले थे ?''

मैंने उसकी खामोशी तोड़ने तथा दिमाग में घुमड़ते कई प्रश्नों के उत्तर जानने की खातिर पूछा।

''हाँ कई बार। काजल की तरह हजारों लड़कियाँ अपनी जिन्दगी को हाथ पर लिए हुए महानगर के फुटपाथों पर घूम रही हैं। गरीबी और भूख से लड़ाई करती हुई, अपना समय, अपनी खुशी, अपने जीवन की चिर संचित मर्यादा, इज्जत लुटाती हुई। देह-व्यापार में संलग्न।''

''आर्थिक संत्रास भयानक रोग है।''

''हाँ, तुम ठीक कहते हो। काजल भी कहती थी। हम मध्यवर्ग की ढहती हुई इमारत की ईंटें हैं। काजल की मन्द मुस्कान अब भी मुझे याद रहती है। एक दिन सवेरे कोई मेरा दरवाजा खटखटा रहा था। मैंने दरवाजा खोलकर देखा, बाहर काजल मुस्कराती हुई खड़ी थी। मैंने आश्चर्य से पूछा—''यहाँ कैसे आई ? मेरा पता किसने दिया ?''

''अमित बाबू ! यह कलकत्ता महानगर है। और यह रहा आपका पता। इम्प्लायमेन्ट कूपन। अब आप मुझे अन्दर आने के लिए नहीं कहेंगे ?''

''हाँ-हाँ आओ, ।''

मैं सोच नहीं पा रहा था कि उसके पास मेरा इम्प्लायमेन्ट कूपन कैसे पहुँच गया। वह आकर कमरे में खड़ी हो गई। कुर्सी थी नहीं। बेतरतीब किताबों, अखबारों से भरा हुआ कमरा। फर्नीचर के नाम पर एक दीवान था यानी मेरा बिस्तर। मैंने लकड़ी के बक्स पर लदी पत्रिकाओं को हटाकर उसके बैठने लिए जगह बनाई। बहुत दिनों की जमी धूल साफ की। 'लो यहाँ बैठो' मेरे कहने पर वह बैठ गई। मैं मन-ही-मन सोच रहा

था, वह भला क्या सोचेगी। किस कदर मैं इस सीलन, बदबूदार, माचिसनुमा कमरे में दिन बिता रहा हूँ। वह मुर्शिदाबाद सिल्क की नीली बातिक साड़ी पहने थी। उसी से मैच करता हुआ पूरी बाँह का ब्लाउज। आधी बाँह का स्वेटर। कंधे से लटकता हुआ काला बैग। कुछ देर तक वह साश्चर्य मेरे सन्दूकनुमा कमरे का मुआयना करती रही। उसका ध्यान बँटाने के लिए मैंने उससे पूछा—"यह कूपन तुम्हें मिला कैसे ?"

"आप ही बताइये। है न रहस्य की बात ? मैं सोच ही रही थी, आपको आश्चर्य होगा।" मैं चुप रहा। मुझे खामोश देखकर उसने फिर कहा—"अच्छा मैं ही बता देती हूँ। कल आपने अपनी पाकेट से जो रुपये निकाल कर मुझे कुछ रुपये दिये थे, उन्हीं में था यह कूपन। उस पर आपका पता भी लिखा है। सोचा इतने जरूरी कागज को वापस कर दूँ।"

मैं खुश होते हुए बोला—"सचमुच तुम्हें कष्ट हुआ यहाँ तक आने में। इस पर्ची के बिना मुझे नई नौकरी के लिए मुश्किल पड़ती। मैं इस अखबार की नौकरी से खुश नहीं हूँ। बहुत कम वेतन मिलता है। खैर छोड़ो। चाय पियोगी ?"

"कहाँ से लायेंगे चाय ?" बड़ी-बड़ी गहरी आँखों से मुझे ताकते वह बोली।

"यहीं बना लेता हूँ। बस दो मिनट ठहरो।"

मैंने किरासिन स्टोव जला दिया। केतली में दो कप पानी रखता कि इसके पहले ही वह उठकर मेरे हाथ से केतली लेते हुए बोली—"आप बैठिये, मैं ही चाय बना देती हूँ। आप ठहरे पत्रकार, लेखक। चूल्हा-चक्की के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए।"

जिस अधिकार-भरे स्वर में उसने कहा था, मैं चौंक पड़ा। केतली उसे दे दी। चीनी, चाय का डिब्बा आलमारी से उतारकर उसके पास रख दिया। दूध था नहीं। मैंने कहा—"काली चाय ही पीनी पड़ेगी, दूध नहीं है।"

उसने कहा—"मैं इसकी अभ्यस्त हूँ।"

इस पर हम दोनों ही हँस पड़े। उस हँसी में जैसे हमारी आत्मीयता

सहज रूप से निखर उठी थी। मैं सवेरे के अखबार की जगह उसे ही पढ़ रहा था। चाय बनाकर गिलास मेरी ओर बढ़ाते हुए बोली—"लीजिए। खाली पेट ही चाय पीते हैं ? कुछ खा लेने के बाद पीना चाहिए।"

मैंने कहा—"तन्दुरुस्ती के बारे में मैं अधिक सोचता नहीं। क्या होगा अच्छी सेहत बनाकर।"

चाय की चुस्की लेते हुए उसने कहा—"बिना तन्दुरुस्ती के जीने का संघर्ष अच्छी तरह नहीं झेल सकते।"

मैं अखबार परे रखते हुए उसकी ओर देखने लगा। वह कल से अधिक सुन्दर लग रही थी। मुझे अपनी ओर ताकते हुए देखकर उसकी नज़रें दीवाल पर लगी पुस्तकों पर टिक गईं। उसने पूछा—"इतनी किताबें आपकी अपनी हैं ?"

"मेरी ना भी हों तो पढ़ सकता हूँ। चार पाँच लाइब्रेरी का सदस्य हूँ। सभी से एक-एक, दो-दो पुस्तकें उधार लाता हूँ। कुछ मित्रों की पुस्तकें मेरे नाम भेंट की गई हैं। कुछ अपने पैसों से खरीदी हैं और कुछ चोरी की हैं।"

"उइ बाबा ! आप चोरी भी करते हैं ?"

"चोरी कौन नहीं करता। फिर यह तो ज्ञान की चोरी है।"

"हाँ, मैं भी स्कूल लाइब्रेरी से कुछ अच्छी किताबों की चोरी किया करती थी। बाद में पढ़कर वापस रख देती थी। वह भी चोरी-छिपे।"

हम दोनों हँसने लगे। मैंने देखा, हँसते हुए उसके दाँतों की पंखुड़ियाँ चमक उठती हैं। मैं उसे देखकर मन-ही-मन सोच रहा था—यदि मुहल्ले में किसी छोकड़े ने देख लिया तो पाढ़े में यह खबर महामारी की तरह फैल जायेगी। दूसरे ही क्षण इस विचार से मुक्त हो गया कि यह मेरा व्यक्तिगत मामला है, व्यक्तिगत, निहायत व्यक्तिगत।

"आप खाना कहाँ खाते हैं ? होटल में ?"

"हाँ होटल में और कभी-कभी इसी स्टोव पर बना लेता हूँ।"

"क्या बनाते हैं ?"

"खिचड़ी, आमलेट, वेजीटेबुलनुमा टमाटर सूप। यानी, जो खाना एक ही बर्तन में एक साथ तैयार हो जाय।"

"अच्छा लगता है ?"

"अपने हाथ का बनाया खाना और अपना बच्चा भला किसे अच्छा नहीं लगेगा।"

"आपको कैसे पता कि अपना बच्चा सबको अच्छा लगता है ? यह तो बाप बनने के बाद होता है। वैसे अर्द्धसत्य वाले फिलसफा जीवन से काफी दूर होते हैं।"

सचमुच मैं तुमसे बताना चाहता हूँ, उस लड़की के मुँह से यह बातें सुनकर मैं झेंप गया। कोई उत्तर देते नहीं बना। मैं उसके बारे में पहले परिचय में जो बातें सोच रहा था उनसे हटकर दूसरी मुलाकात में नया अनुभव हो रहा था। वह बुद्धिमान लगी। उसकी बुद्धि का जायजा लेने के विचार से मैंने उससे पूछा—

"बी० ए० में तुम्हारे विषय क्या थे ?"

"शिक्षा, समाजशास्त्र और दर्शन।"

"तुम मध्यवर्ग घर में पैदा हुई। जानती हो इन विषयों को पढ़कर नौकरी मिलने में कितनी परेशानी होती है ?"

"हाँ जानती हूँ कि मुझे विज्ञान या वाणिज्य लेना चाहिए था या कोई तकनीकी विषय। फिर भी मैं दर्शन, समाजशास्त्र पढ़ना चाहती थी। मेरी इच्छा थी कि दर्शन पर रिसर्च करूँगी। 'होमर' और 'प्लेटो' मुझे बहुत प्रिय हैं।"

"तुम अब भी अपनी पढ़ाई जारी रख सकती हो। प्राइवेट परीक्षाएँ दे दो।"

"ना बाबा, जो होना था हो चुका। मेरा परिवार ही मेरे लिए दर्शन बन गया है। अब पढ़ाई नहीं हो सकती। सबेरे से रात तक जो लड़की पैसा कमाने के लिए फ्लर्टरिंग करती फिरती हो, अपनी इज्जत बेचती हो, उसे अधमरी ही समझो। उसका दिमाग तो उसके दिल में छिपा होता है और दिल किसी दूर देश में निष्कासित।"

काजल उदास हो उठी। मुझे उसके प्रति सहानुभूति हो आई। मैंने हाथ में थमे गिलास को फर्श पर रख दिया। भावावेश में उठकर उसके नजदीक गया और दोनों हाथों से उसे खड़ा करते हुए सीने से लगा लिया। उसकी

आँखों से आँसू बरसने लगे। सीने में मुँह छिपाये वह रो रही थी और मैं उसकी पीठ थपथपाता उसे सान्त्वना दे रहा था। मैंने देखा, मेरे कमरे की सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की से मुहल्ले के कई छोकड़े झाँक रहे हैं। मैंने मन-ही मन सोचा कि ये अपने घरों के बड़े-बूढ़ों को जाकर इस घटना के बारे में जरूर बतायेंगे और जवान लड़कियों की माताएँ इस घटना पर अपने पतियों को नमक-मिर्च लगाकर विस्तृत सूचनाएँ देंगी। और हुआ यही। कुछ ही देरी में पाढ़े के दादा अपने गैंग के साथ आकर मुझसे तर्क-वितर्क करने लगे। मैं सब कुछ सहन कर सकता हूँ—गरीबी, बेकारी, फाकेमस्ती, परन्तु गँवार पट्ठों की बे सिर-पैर की बातें नहीं। मैंने उस दादा की खूब पिटाई की। चमचे भाग खड़े हुए। काजल के सामने ही यह मार-पीट हो गई। जरा-सी देर में। काजल ने मुझसे कहा—"इन गुण्डों से सावधान रहिएगा। मेरे कारण ही आपको यह सब सहना पड़ा। मुझे दुख है। न आती तो ठीक था। आकर आपको परेशानी में डाल दिया। मेरी किस्मत ही ऐसी है।" मैंने काजल को समझाया कि कलकत्ते में ये घटनाएँ साधारण हैं। हर मुहल्ले, ट्राम, बस, पार्क, होटल, सिनेमा हाल में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। इस नगर का एक यह भी रंग है। बिनार्थ गोल-माल—झमेला। झंझट।

"अच्छा अमित बाबू, अब चलूँगी···" वह जाने के लिए उठ खड़ी हुई। मैं चौंक उठा अपना नाम सुनकर। दोबारा कहा उसने—"अमित बाबू! कब आएँगे आप मेरे घर? यह रहा मेरा पता।" उसने पर्स से कलम निकाल कर पास पड़े हुए राइटिंग पैड पर अँग्रेजी में लिख दिया। पन्द्रह, रवीन्द्र नगर, उत्तरपाड़ा।

मैं बिना कुछ बोले या कोई उत्तर दिए अनमने मन से उसे कमरे से निकल कर जाते हुए देखता रहा। उस समय मेरा आहत दर्प मुझे कचोट रहा था। मैंने इम्प्लायमेन्ट कूपन उठाकर देखा। उस पर मेरा नाम लिखा था। काजल ने इसे देखा होगा। कल मैंने उसे अपना नाम निरंजन आचार्य बताया था। 'ह्वाट ए सिली मैन आई एम!' आत्मग्लानि से मन भर गया। मैंने अपने बचाव के लिए कितने सारे झूठ, प्रपंच से किला बनाया और वह किला संवेदनाओं के स्पर्श मात्र से अकस्मात् ही गिर-ढक चूर-चूर हो

गया।

अब तक 'बार' में एक हंगामा मच गया। सामने वाली टेबुल पर बैठा एक अधेड़ व्यक्ति नशे में जोरों से 'रवीन्द्र संगीत' की धुन पर हिन्दी गीत गाने लगा।

उस आदमी को बार से बाहर निकालने के लिए दो बैरे उसे पकड़कर ठेलते हुए गेट की ओर ले जाने लगे तो मैंने कहा--इस तरह भी क्या पीना कि होश ही न रहे। उसने धीरे-धीरे यह गीत गुनगुनाया—

"अब न रहे वे पीने वाले
अब न रही वह मधुशाला।"...

फिर मुझसे पूछा--"यह किसने लिखी है?"

"बच्चन ने। डा० हरिवंश राय बच्चन। अमिताभ के पिता।"

"तुमने गीत नहीं लिखे?"

"नहीं। मैं गीत लिखना पसन्द नहीं करता। विशेषकर अतुकान्त। गाकर लिखना या लिखकर गाना तो कुछ समझ में आता है परन्तु मौन भाव से गीत गढ़ना गीत के प्रति ज्यादती है।"

"गीतों में स्वर है, लय है, ताल है, सीधी-सीधी अभिव्यक्ति है। पर किस्सा कहानियों में आजकल कुछ तत्त्व ही नहीं दिखाई देता। तुम कहानियाँ लिखना बन्द कर दो। गीत लिखो। देखोगे, एक दिन तुम्हारे गीत बिकेंगे।"

मैं उसकी आघात करने वाली मुद्रा से ऊबने लगा। वह मेरे लेखन पर बराबर आक्रमण करता जा रहा था। 'बीयर' समाप्त हो गयी। बैरे को बुलाकर एक और 'बीयर' लाने का आर्डर दे दिया। सिगरेट सुलगाकर पीछे कुर्सी में उठंग गया। वह अब तक मेरी ही ओर ताकता रहा। मैंने बैरे को दोबारा बुलाकर एक प्लेट चिप्स ले आने के लिए कहा। मेरे दिमाग में उसके द्वारा बताई गई कहानी चल रही थी। अचानक ही मेरे मुँह से निकल पड़ा—"तुमने काजल के बारे में फिर कोई खोज-खबर नहीं ली?"

उसने मेरे प्रश्न का कोई उत्तर तत्काल नहीं दिया। कुछ देर की

खामोशी के बाद बताया—"काजल के जाने के कुछ देर बाद पाढ़ा के दादा अपने चमचों के साथ सजधज कर आ गए। तर्क-वितर्क करने लगे। अश्लील से अश्लील सम्बोधनों से मुझे जलील करने लगे। उनमें से एक दढ़ियल बौने छोकरे की मैंने पिटाई कर दी। फिर उस रात जमकर बमबाजी हुई। जान से मार डालने की धमकी दी गई। रात में पाढ़े के छोकड़े मेरे कमरे की खिड़कियों पर पत्थर बरसाते रहे। पाढ़े के बुजुर्ग मेरे बचाव के लिए आए। सुझाव दिया कि मैं पाढ़ा छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाऊँ। मैंने सोचा मेरा सारा समय इन गुण्डों से निबटने में लग रहा है। कोई काम शान्ति से नहीं कर पा रहा हूँ। चलो छोड़ो। कहीं और चलो। सो भवानीपुर में एक कमरा ले लिया। पर किराया अधिक है। दो सौ रुपये महीने। मुझे अखबार से कुल आठ सौ ही मिलते हैं। अब भला तुम्हीं बताओ, इस महानगर में इतनी कम आमदनी में कैसे गुजर किया जा सकता है। फिर मेरी पत्नी पढ़ी-लिखी, फैशनेबुल है। रोज-ब-रोज कोई न कोई माँग करती है।"

"और ऊपर से जब पीने का बिल ही चार-पाँच सौ रुपए हो···।" मैंने उस पर करारा आघात किया। वह समझ गया कि मैं उस पर वार कर रहा हूँ। कुछ क्षण खामोश रहा फिर बोला—"देखो, मैंने अपनी तनख्वाह के बारे में तुमसे बताया। पीने के बारे में नहीं। तुम यदि जानना ही चाहते हो तो सुनो—मैं रोज नहीं पीता। कही किसी पत्रिका या अखबार में लेख, टिप्पणी छपने पर पारिश्रमिक मिल जाने पर गम गलत करने बैठ जाता हूँ। मैं इस शहर में बहुत अकेलापन महसूस करता हूँ।"

मैं साश्चर्य उसे ताकने लगा। मेरे चेहरे को ताकते हुए फिर बोला—

"यही नहीं। काजल ने अपनी बहन के पास इतना पैसा रख छोड़ा है कि खैर छोड़ो। सिर्फ तुम्हें बताना चाहता था।" उसने अपना गिलास ऊपर उठाकर मुझे 'विश' किया और फिर कहा—"काजल के लिए। उसकी आत्मा की शान्ति के लिए।"

मैंने अपने आश्चर्य की गाँठें खोलते हुए उससे पूछा—"तुम अभी बता रहे थे कि पहली मुलाकात में तुमने उसे तीस रुपए दिए। कि वह—मध्यवर्ग की संघर्षरत लड़की थी। कि वह···" मेरा वाक्य पूरा भी नहीं

हुआ था कि वह बीच में बोल उठा—"देखो इस शहर में किस क्षण कहाँ क्या होगा, कोई नहीं जानता। बस चक्कर चलने की देर है। जो यहाँ कपड़े की फेरी करने आए थे, आज देश के बड़े उद्योगपति हैं, जो रिक्शा चलाने आए थे, बड़े-बड़े होटलों को चलाते हैं, जो फुटपाथ पर अखबार बेचते थे, वड़े-बड़े प्रेस, अखबारों के मालिक बने बैठे हैं। जब इस बहर में पानी, हवा, आदमी के रक्त, जिन्दा या मुर्दा लाशों तक का व्यापार होता है, तो एक सर्वहारा लड़की पैसे वाली भला क्यों नहीं बन सकती। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।"

"पर यह कैसे हुआ ?" मैं तीव्र उत्सुकता में भरकर बोला।

"देखो, पहले इस बात को समझना होगा कि आदमी से महान या गया-गुजरा जीव इस दुनिया में कोई दूसरा नहीं। वह सब कुछ सम्भव कर सकता है। उसकी आस्था और काम करने की इच्छा ही उसे अपनी सतह से ऊपर उठा सकती है। उसका गन्दा दिमाग उसे और दूसरों को तबाह कर सकता है। काजल से दूसरी मुलाकात के बाद मैं उसके घर उत्तरपाड़ा गया था। फिर कलकत्ते में कई बार मिले। पर उसके बाद अचानक वह गायब हो गई। लगभग दस साल बाद अखबार के काम से बनारस गया था। दशाश्वमेध घाट पर घूमता हुआ मैं चौक की ओर जा रहा था। सवेरे के आठ बजे थे। अचानक ही एक कार मेरे सामने आकर रुकी। हार्न बजा। मैंने देखा तो आश्चर्य से ठगा-सा रह गया। उस लम्बी विदेशी कार को काजल चला रही थी। उसने दरवाजा खोलकर मुझे बैठने के लिए कहा तो आज्ञापालक बालक सा उसकी बगल में बैठ गया। कार स्टार्ट करते हुए बोली—"अमित बाबू, यहाँ कैसे ? आश्चर्य हो रहा है। कलकत्ता से दूर यहाँ बनारस में आप हठात् मिल जायेंगे। मैं आपसे मिलने शाम बाजार वाले घर पर गई थी, परन्तु आपने तो कहीं दूसरी जगह मकान ले लिया है। नये मकान का पता भी आपने नहीं बताया। मुहल्ले में मुझे देखकर दादाओं ने मेरा खूब अपमान किया। मुझे अपमानित कर वे समझ रहे थे कि आपको अपमानित कर रहे हैं। खैर छोड़िए। कहाँ ठहरे हैं यहाँ ?"

"काली बाड़ी।"

"मेरे यहाँ नहीं ठहरेंगे ?"

मैंने उससे पूछा—"क्या अब यहीं रहती हो ? उत्तरपाड़ा छोड़ दिया ?"

"हाँ, यहाँ रहते हुए दो साल हो गए। उत्तरपाड़ा छोड़े हुए काफी दिन हो गए।

पिताजी अचानक कहीं लापता हो गए। उनके जाने के दो महीने बाद माँ भी दमा की असाध्य बीमारी से चल बसी। फिर भाग्य ने मेरे साथ खूब खेल खेला। फीस न देने के कारण अनु को स्कूल से निकाल दिया गया। मैंने घूमने वाला धन्धा छोड़ दिया था। एक ट्यूशन करती थी। हिन्द मोटर्स कालोनी में एक बच्ची को पढ़ाती थी। पर घर का खर्च सिर्फ पचास रुपयों से चलता नहीं था। खूब गरीबी झेलनी पड़ी। कोई अन्य सहारा न देखकर एक दिन मैं अपनी पुरानी लाइन पर फिर चल पड़ी। इस बीच बहुत कुछ सहा, भोगा। बड़ी लम्बी कहानी है। फिर कभी फुरसत में आपसे बताऊँगी। बस फिलहाल तो इतना ही···।"

एक आलीशान महल के बड़े गेट के अन्दर कार घुसी। गेट पर वर्दी में सजे दरबान ने सैल्यूट किया। लान में कार पार्क करते हुए काजल बोली—"यह मेरा गरीबखाना है।" मैं उस भव्य कोठी और विशाल लान की खूबसूरती देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने मुझे लाकर ड्राइंग रूम में बिठा दिया और 'मैं अभी आई' कहकर अन्दर चली गई।

मैं हालनुमा बैठकखाने की सजावट देखकर अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि काजल इसकी मालकिन भला कैसे हो सकती है। मुझे अनुभव हो रहा था कि समय की लीला अपरम्पार है। कब, कैसे, क्या कुछ आदमी के जीवन में घटित होगा, इसे वह स्वयं अपनी साधारण बुद्धि से नहीं जान सकता। पाँच साल पहले मुझे काजल की दुःख-दयनीयता में डूबी आकृति याद आ रही थी, जब उसने 'काको' की केबिन में मेरे हाथों से तीस रुपये लेकर अपने पर्स में रख लिये थे। घोर गरीबी और अभावों के बीच जीते हुए उसके पिता के चेहरे पर असहायपन की रेखाएँ, माँ का कृशकाय बीमार शरीर और छोटी बहन की बात याद हो आई। मैं उस आलीशान महल के सजे-सजाए बैठकखाने में बैठा कीमती सोफे, पर्दे, पर्सियन कार्पेट, दीवारों पर कोणार्क, अजन्ता, एलोरा की चित्रित कलात्मक मूर्तियों का

भाव-विलास बनारस के मालवीय रोड पर स्थित इस बँगले में देख रहा था। राजस्थानी चित्रकला के रंगों में कृष्ण, गोपियों की साड़ियाँ चुराए कदम्ब वृक्ष पर बैठे यमुना में नहाती गोपियों को जल से बाहर आने के लिए संकेत कर रहे हैं। कमरे में बीचोबीच छत से मुगलकालीन चन्दे-लियर लटक रहा था। कमरे में तीन एयरकंडीशनर भी लगे थे। गर्मियों में कमरे को ठंडा करने के लिए। बैठकखाने के एक ओर बुकशेल्फ थी जिस पर चुनी हुई पुस्तकें सजाई गई थीं। काजल की आवाज से मैं चौंक कर उसकी ओर देखने लगा। वह सफेद जार्जेट की साड़ी पहने हुए थी। कन्धों पर बाबकट बाल लहरा रहे थे। माँग में सिन्दूर और हाथ में शंख की चूड़ी देखकर मन हुआ कि पूछ लूँ—शादी कब की? पर मुझे अपनी ओर इस तरह ताकते हुए देखकर उसने शायद मेरी उत्सुकता को भाँप लिया, तभी एक-दूसरे सन्दर्भ से मुझे जोड़ते हुए पूछा—"कब आए कलकत्ता से।" घूमने आये हैं या अखबार के काम से?"

"अखबार के काम से। बी० एच० यू० (बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय) के बारे में, हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द, बनारस की साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों पर रपट तैयार करना है।"

"बनारस देखा अच्छी तरह?"

"हाँ। अच्छा शहर है।"

"सभी का यही ख्याल है। बनारस में अच्छा लगता है। वैसे अच्छा लगने लायक वहाँ कुछ भी नहीं।"

"क्यों? दशाश्वमेध घाट है। बाबा विश्वनाथ हैं। मानस मन्दिर, भारत माता मन्दिर, संकट मोचन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और सबसे बड़ी बात है, जो बसे काशी सो बैकुण्ठ वासी।"

अब तक वर्दी में सजे-सजाए दो बैरे नाश्ता लेकर आ गए तो हमारी बात बीच में ही टूट गई। मेज पर नाश्ता सजा दिया गया। आमलेट, टोस्ट, पनीर-पकौड़ा, सैन्डविचेस, सूखे मेवे, केले, सेव, अंगूर, अनार···। यह सब मेरे लिए था और काजल के लिए कटा हुआ खीरा, एक गिलास दही की लस्सी।

मैंने काजल से कहा—"इतना खा लेने के बाद मुझसे काम नहीं होगा।

फिर तो सारा दिन सोने की तबियत करेगी। मैं सिर्फ एक टोस्ट और चाय ही लूँगा।"

काजल अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में कौतूहल भरकर मुझे देखते हुए बोली—"दुनिया में चाहे जितने परिवर्तन हों पर पत्रकार नहीं बदलते। उन्हें बस चाय, सिगरेट, दारू और समाचार से ही मोह है। कहीं मेरे ऊपर रिपोर्ट तो नहीं छापेंगे। वैसे क्या मैं अखबार की मुख्य खबर बनने लायक नहीं?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं। एक गरीब यायावर लड़की से धनी गृहस्थ औरत बनने की बात असाधारण नहीं तो क्या है?" यह बात अचानक ही मुँह से निकल गई। सोचा, काजल जरूर नाराज हो गई होगी। वह खीरे का एक टुकड़ा दाँतों के बीच रखते हुए दीवाल में अंकित कोणार्क की मूर्तियों की तरफ देखने लगी। मैं अब तक उसके चेहरे पर बनते भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। वह संयत होते हुए बोली—"आपको मेरा यह नया जीवन देखकर आश्चर्य लग रहा होगा न? मुझे भी कभी-कभी लगता है, यह सब कैसे हो गया?"

काजल ने बची हुई लस्सी पीकर गिलास मेज पर रखते हुए कहा—"आप सुन सकेंगे मेरी आप बीती गाथा? मेरे बारे में सब कुछ जानकर मुझसे नफरत तो नहीं करेंगे?"

मैंने कहा—"मैं तुमसे कभी भी नफरत नहीं कर सकता। तुमने जीवन में संघर्ष झेला है। अस्तित्व के लिए संघर्ष झेलने वालों के लिए मेरे मन में सदा आदर-भाव रहा है।"

काजल हँस पड़ी। उस हँसी में मुझे दस साल पहले वाली काजल की हँसी दिखाई पड़ रही थी, जब वह मेरे घर पर मेरा इम्प्लायमेन्ट कूपन लौटाने आई थी और इन दस वर्षों में उसकी हँसी में कोई खास अन्तर नहीं आया था। वही स्निग्धता, वही खुलापन, वही आत्मीयता। बस, बदला है तो उसका साज-शृंगार। शरीर का आकार। जीने का ढंग। वह भी शायद इसीलिए कि आदमी अपने परिवेश के बीच जीते हुए परिवेश से अलग नहीं हो पाता। जिस सुख, समृद्धि के बीच वह आ खड़ी हुई है, उसमें उसके रहन-सहन, खान-पान में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यह

स्वभाव कुछ तो आदमी की आदतों के कारण होता है और कुछ अनायास ही स्थितियों के बीच होने के कारण। मुझे लग रहा था कि काजल को मुझसे कहीं-न-कहीं किसी रूप में लगाव है। पर यह लगाव जहाँ आठ वर्ष पहले उसकी अभावग्रस्त जिन्दगी के तंग दायरों में बँधा था, वहीं आज उसकी समृद्धि के बीच अतीत की आत्म-पीड़ा बनकर स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। मैंने उससे पूछा—"क्या कलकत्ता याद नहीं आता ?"

"हाँ, बहुत याद आता है पर आप ऐसा क्यों पूछ रहे हैं ? मैं तो अकसर कलकत्ता जाती रहती हूँ। वहाँ भी हमारा घर है, न्यू अलीपुर में।" फिर बात को बदलते हुए कहा—"अनुराधा बी० एच० यू० में पढ़ती है। आप उससे मिलकर खुश होंगे। बड़ी हो गई है।"

"किस क्लास में है ?"

"बी० ए० कर रही है। साइकोलॉजी से। इस साल फाइनल है।"

"और तुम्हारे पति ?" यह एक ऐसा वाक्य था जिसे न चाहते हुए भी मैं बोल गया। मन में उत्सुकता हो रही थी कि उसके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकूं। जिस समय यह वाक्य बोल रहा था, मन में यह भी होने लगा कि मुझे बात कहीं दूसरी जगह से शुरू करनी चाहिए थी। पति, औरत का सबसे कमजोर पक्ष होता है। जहाँ एक ओर वह पति की समर्पिता होती है, दूसरी ओर पति के व्यक्तित्व में समाहित, आज्ञाकारिणी, सामाजिकता के सीमित दायरे में बँधी, बाँधी गई।

"मेरे पति जेल में हैं।" कहकर वह उदास हो गई। जिस तीव्रता से मैंने प्रश्न पूछा था, उससे भी अधिक तीव्रता से उसका उत्तर सुनकर चौंक गया।

"यह सब कैसे हुआ ?"

"एक शाम मैं मैट्रो के बाहर ग्राहक की तलाश में खड़ी थी। अचानक एक कार आकर रुकी। एक जानी-पहचानी शक्ल मुझे दिखाई दी। मैं आगे बढ़कर कार तक गई। सौ रुपये पर बात तय हो गई। मैं कार में उसके साथ बैठ गई। वही कार को चला रहा था। वह मैट्रो से कार में मुझे बिठाकर मैदान की तरफ ले गया। उसने उस शाम मुझे सौ रुपये दिये और रुपये देता हुआ बोला—प्रतिदिन यदि तुम मेरा छोटा-सा काम कर

दिया करो तो सौ रुपये की जगह पाँच सौ रुपये तक कमा सकती हो। मेरे पूछने पर उसने बताया कि एक छोटे-से बाक्स को खिदिरपुर डक से बड़ा बाजार पहुँचाना होगा। पिताजी बहुत बीमार थे। अनुराधा की परीक्षा की फीस भरनी थी। मैं उसकी बात मान गई। रोज शाम को सात बजे के आसपास उसकी कार 'मैट्रो' के नीचे आती। मैं पहले से ही उसकी प्रतीक्षा करती रहती। कार का दरवाजा खुलता। मैं चुपचाप कार में जाकर बैठ जाती। कार मुझे खिदिरपुर डक के पास ले जाती। एक आदमी वहाँ पहले से ही खड़ा प्रतीक्षा करता रहता। एक बक्सा कार के पीछे रख देता और बक्सा कहाँ पहुँचाना है, पहले से ही मुझे वहाँ का पता दे दिया जाता। यह क्रम लगभग पाँच-छः महीनों तक चलता रहा। मैं आश्चर्य करती हूँ कि इस बीच उस आदमी ने मेरी इज्जत से खेलने की कोशिश नहीं की। फिर एक दिन उसने एक पार्टी का कार्ड देते हुए मुझसे कहा—पार्टी में तुम्हें जरूर आना है। मैं दिन-पर-दिन देख रही थी कि उस आदमी का झुकाव मेरी तरफ काफी अधिक बढ़ गया है। बीच-बीच में वह मेरा हाथ पकड़ लेता या अपनी ओर खींचता, पर मैं हमेशा उससे बच जाती। पार्टी 'ग्रैण्ड होटल' में थी। पार्टी के एक दिन पहले उसने मुझे एक बेशकीमती साड़ी तथा सोने का नेकलेस (हार) देते हुए कहा—इसे ही पहन कर आना। मैं पार्टी में पहुँची तो उसने होटल के गेट पर मेरा स्वागत करते हुए मुझे फूलों का गुलदस्ता भेंट किया। मैं उसके इस अप्रत्याशित सम्मान से आश्चर्य में पड़ गई। पार्टी उसके जन्म-दिन की खुशी पर थी। गुलदस्ता मुझे भेंट करना चाहिए था। पर मैंने फूलों से कभी प्यार करना सीखा ही नहीं, क्योंकि जीवन में जन्मते ही काँटों के बीच भटकने के लिए नियति ने छोड़ दिया। पार्टी में शहर के बड़े-बड़े लोग आए थे। 'काकटेल', नाच-गाना सब कुछ था और उन सबके बीच अचानक उस व्यक्ति ने मेरा हाथ पकड़कर ऊपर उठाते हुए कहा—'देवियो और सज्जनो ! कृपया शान्त रहें। मैं मिस काजल चटर्जी के साथ शादी करना चाहता हूँ।' हठात् शादी का प्रस्ताव इतनी बड़ी पार्टी में सुनकर मैं एकदम से स्तब्ध रह गई। इतना बड़ा आदमी मेरा हाथ थाम रहा है। क्या करती। उसने कोट की जेब से निकाल कर अँगूठी मेरी अँगुली में पहना दी। जोरों की तालियाँ बजी थीं।

उसके द्वारा पहनाई गई हीरे की अँगूठी को समूचे मन से स्वीकार कर लिया। सप्ताह-भर में हमारी शादी हो गई। बड़ी धूमधाम से। कई बार विदेश भी हो आई। पेरिस, लंदन, न्यूयार्क, टोकियो आदि परन्तु शायद मैं हमेशा संघर्ष झेलते रहने के लिए ही पैदा हुई हूँ...।"

वह उदास हो उठी। एक गहरा मौन कुछ क्षणों के लिए हमारे बीच छाया रहा। काजल ने अपनी आत्म-कथा का विस्तार करते हुए बताया—"एक दिन अचानक पिताजी के घर छोड़कर कहीं गायब हो जाने के बाद माँ अधिक बीमार रहने लगीं। अन्त में वे भी कई महीने की असाध्य बीमारी से हमें बेसहारा छोड़कर चल बसीं। हम दोनों बहनें उत्तरपाड़ा का मकान छोड़कर 'न्यू अलीपुर' में पति की कोठी में रहने लगीं। अनु इस नये आलीशान महल में बहुत खुश थी। मेरे पति मेरी बहन को बहुत चाहते हैं। उसके लिए नये कपड़े बनवा दिए। साड़ियाँ, जीन्स, गरारा, मैक्सी आदि और प्रेसिडेन्सी में नाम लिखवा दिया। अनू अब कार से कालेज आने-जाने लगी। मुझे जीवन में यह परिवर्तन देखकर अद्भुत सपना-सा लग रहा था। इतना सारा धन, इतनी शान-शौकत, पार्टियाँ, सैर-सपाटे। खूब अच्छी तरह सुख से जीवन की गाड़ी चल रही थी, पर अचानक ही एक रात पुलिस ने हमारी कोठी पर छापा मारा। सारे घर की तलाशी ली और आँखों के सामने मैं देख रही थी—मूर्तियों में हीरे, बाथरूम के टब के नीचे सोने की ईंटें, सोने के बिस्कुट, कार्पेट के नीचे विदेशी रुपयों के बण्डल। सब मिलाकर आयकर अधिकारियों की लिस्ट के अनुसार बीस लाख का माल बरामद हुआ था। मेरे पति को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। मैं रोती-गिड़गिड़ाती पुलिस से खुशामद करती रही। जाते-जाते मेरे पति मुझे एक कागज में लिखकर एक नोट देते गए—'काजल यहाँ मत रहना। काफी खतरा है। बनारस चली जाओ। वहाँ मैंने पहले से ही तुम्हारे रहने का प्रबन्ध कर दिया है। मैं जेल से छूटकर तुमसे बनारस में ही मिलूँगा। किसी को बनारस का पता मत बताना।' और उसी दिन मैं अनुराधा को लेकर बनारस चली आई। बहन को यहीं यूनिवर्सिटी में भर्ती कर दिया और दिन गिन रही हूँ कि कब वे जेल से छूटकर आयेंगे। आप अनु से मिलेंगे तो खुश हो जायेंगे। वह मेरी जैसी

बुद्धू गँवार नहीं। फिलासफी पर घण्टों बोलती रहती है। मैं उसके लिए बहुत चिन्तित हूँ। क्या करूँ। उसे इस गलत ढंग से कमाए गए धन की दुनिया से दूर रखना चाहती हूँ परन्तु कुछ उपाय नहीं सूझता। अमिताभ बाबू! आप उसके लिए कुछ कीजिए न।

काजल की आँखें सजल हो गईं। विस्मय और अर्थपूर्ण कौतूहल में भरकर ही उसने रुआँसे कंठ से पूछा था—"अब तक मैं जो कुछ आपसे कह रही थी, उसे सुनकर आप मेरे बारे में पता नहीं क्या सोचेंगे। इस भरी दुनिया में मेरा दुख बाँटने वाला कोई नहीं। आज आपको अचानक पाकर लग रहा है, मैंने बहुत कुछ पा लिया है। पहले दिन के परिचय के बाद मैंने आपको ईमानदार व्यक्ति के रूप में पाया। एक मित्र, शुभचिन्तक···। परन्तु मेरे जीवन की गन्दगी से आप जरूर नफरत करेंगे।"

मैं अपना अज्ञान विचारों की खोल में लपेटते हुए बोला—"नहीं, ऐसी बात नहीं। मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि···" मैं कुछ बोलता इसके पहले ही वह संयत स्वर में बोल उठी—

"आप मेरे मुँह से स्पष्ट कहलवाना चाहते हैं, हम कालाबाजारी का धन्धा करते हैं और सभ्यता के आईने में अपना चेहरा देखते हैं।"

उसकी दो टूक बातें सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। दोबारा कुछ भी कहने लायक शब्द मेरे पास बचे नहीं। अपराधी भाव से कहा—"आय एम सॉरी। मुझे दुःख है मैं तुम्हारी स्थिति को अच्छी तरह समझता हूँ।"

काजल ने घड़ी देखी। सोफे से उठते हुए बोली—"आप आराम कीजिए। आज दोपहर का खाना यहीं खाइएगा। तब तक अनुराधा आ जायेगी। मैं कुछ काम कर लूँ। और हाँ आप लंच में क्या खायेंगे? बनारस में 'मांगुर' मछली बहुत मिलती है। पर मैं तो आज बनारस का सुप्रसिद्ध 'मोहनभोग' खिलाऊँगी।"

मैंने अनमने मन से कहा—"नहीं, लंच रहने दो। मैं एक-दो जगह जाऊँगा। जरूरी काम है। फिर शाम को चाय पीने चला आऊँगा।"

"अच्छा, आप खाना कहीं-न-कहीं तो खायेंगे। फिर यहीं क्यों नहीं। क्या यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है या मेरी बातों से कुछ नाराज हो गए?"

"नहीं-नहीं। ऐसा मत सोचो। असल में नाश्ता ही इतना अधिक कर लिया कि अब शाम तक कुछ भी न खा पाऊँगा। तुम तो जानती ही हो, पत्रकार का पेट कितना छोटा होता है।"

"हाँ जानती हूँ। अच्छी तरह। लेखकों, पत्रकारों के पेट नहीं सिर्फ मकड़ीजालनुमा एक अदद दिमाग होता है। खबरों के तानों-बानों में उलझता-उलझा, देश-दुनिया, लोक-परलोक की लौकिक-अलौकिक खबरें खोजता, कल्पना के ताने-बाने बुनता···।"

कहते-कहते काजल हँस पड़ी। मैं भी। अब तक की गम्भीरता से उबरकर अच्छा लगा। मैंने काजल से विदा ली और अपना सफारी बैग कन्धे पर लटकाए हुए विशालकाय बंगले से बाहर निकल कर चौक के रास्ते पैदल चल पड़ा। काजल के बारे में सोचते हुए लग रहा था जैसे किसी कहानी की पर्तों में उलझता जा रहा हूँ। उस दिन दिमाग में चार बातें सोची थीं मैंने। पहली यह कि यदि किसी पत्रकार के दिमाग में प्रातःकाल का प्रकाश और पंछियों के सुमधुर गान का रुझान हो तो उसे निरन्तर यात्राएँ करनी चाहिए। यात्रा-संस्मरण या डायरियाँ लिखनी चाहिए। दूसरा कि यदि पत्रकार के दिमाग में अँधेरा और संत्रास भरा हो तो उसे अँधेरे जंगल की आत्मकथा लिखनी चाहिए। अँधेरे जंगल को मैंने चार भागों में बाँटा—आज का व्यक्ति, समाज, समय और राजनैतिक पाखंड। तीसरी बात यह कि यदि किसी पत्रकार के दिमाग में खुराफात भरा हो तो उसे धर्म और राजनीति पर उपदेशात्मक टिप्पणियाँ लिखनी चाहिए और चौथी बात यानी मनुष्य के आत्मविघटन पर आते-आते पीछे से रिक्शा वाला जोरों से चिल्लाया—"ओ बाबू, बायें। कब से घंटी बजा रहा हूँ। जरा हटकर चलिये। कहाँ जइहाँ ?" फिर बिना मेरे कोई उत्तर दिए ही वह ठेठ बनारसी खाली रिक्शा तेजी के साथ भगा ले गया। मैं रिक्शे के पीछे का भाग तब तक देखता रहा जब तक कि वह आँखों से ओझल नही हो गया।

काजल की कोठी से निकल कर सोचा था बी० एच० यू० जाकर 'छात्र संघ' के प्रेसिडेण्ट से इण्टरव्यू ले लूँ, परन्तु मन में जैसे कहीं कुछ तेजी के साथ कचोट रहा था। इतना अस्थिर कभी मैंने अनुभव नहीं किया।

निश्चय किया कि जाकर होटल में कुछ देर के लिए विश्राम कर लूँ। मैंने रिक्शा भी बुला लिया। रिक्शा आ गया। रिक्शे वाले ने कहा—"कहाँ जाना है बाबू?" मैं विना कुछ बोले रिक्शे पर वैठ गया फिर उससे कहा—"यहाँ से बाबा विश्वनाथ का मन्दिर कितनी दूर है?"

रिक्शे वाले ने उत्तर दिया—"जी साहब पास में ही है। इस सड़क से बायीं गली में।" शायद वह असमंजस में पड़ा था कि इस नये बाबू को इतनी छोटी-सी दूरी का सफर रिक्शे से पूरा कराऊँ या नहीं। मैंने कहा—

"अच्छा ले चलो। दो रुपये दूँगा।" दो रुपये से वह खुश हो गया—ऐसा मुझे तब लगा जब उसने मुझसे पूछा—"बाबू साहब, आप बंगाली हैं न? कलकत्ता से आए हैं। बंगाली बाबू लोग बहुत अच्छे होते हैं। पैसे देने में कोताही नहीं करते।" मैंने सोचा कलकत्ते में पच्चीस वर्षों से रह रहा हूँ। दूसरों की नजर में बिलकुल बंगाली हो गया हूँ। नहीं तो उत्तर प्रदेश का ठेठ दिहाती भैया रिक्शे वाला ऐसा न कहता। मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मन में सोच रहा था, यह बंगाली बाबू की नहीं पैसे की प्रशंसा कर रहा है। मैं धोती-कुर्ते में था। काफी ढीली-ढाली धोती और खद्दर का बैंगनी रंग का कुर्त्ता। ऊपर से गर्म ऊनी चद्दर ओढ़े था।

मैंने रिक्शे वाले से पूछा—"तुम बनारस घुमाओगे मुझे?"

"हाँ सरकार, काहे नाहीं। अभी चलें?"

"नहीं अभी नहीं। पूरे दिन का कितना लोगे?"

"जो आप दे देइहैं सरकार!"

"नहीं। ठीक-ठीक बताओ तो चलूँगा। कहाँ-कहाँ ले जाओगे?"

"विश्वविद्यालय, सारनाथ, मानस मन्दिर, शिवमन्दिर, भारत माता मन्दिर।"

"लोगे कितना?" मैंने बीच में उसे टोकते हुए पूछा।

"बाबू साहेब, पच्चीस रुपया सारा दिन का दै दिहौ। लेव, बाबा विश्वनाथ मन्दिर आय गवा।"

मैं रिक्शे से उतर पड़ा। उसे पैसे दिए। जाने लगा तो बोला—"तो चलेंगे न घूमने? मैं रुकूँ यहीं? दर्शन कर लीजिए बाबा का। बनारस

में एक खास जगह जाय का होय तो शाम का लै चली। नाच-गाना की महफिल पसन्द करते हैं न हुजूर ?"

मैंने पीछे मुड़कर रिक्शे वाले को ध्यान से देखा। टाँगों के ऊपर तक मैली धोती, आधी बाँह की बंडी जो बाँह के ऊपर फटी थी। कंधे पर लाल मटमैला अँगोछा। दुबला-पतला साँवला रंग। अधेड़ उम्र। धँसी आँखें। पिचके गाल। रूखे-सूखे बाल। बड़ी-बड़ी दाढ़ी। गरीबी की आग से तपा हुआ निरीहता की चादर से ढँका चेहरा। होठों पर मन्द-मन्द मुस्कान खिल रही थी। जैसे कैक्टस की शाख पर छोटा-सा लाल फूल बेमौसम बेमन से खिल उठा हो। दिसम्बर के जाड़े में वह इन्हीं कपड़ों में रहता है। सोचकर मन खिन्न हो उठा। फिर मैंने अनमने भाव से कहा—

"हाँ, नाच-गाना पसन्द है। तुम ले चलोगे ?"

"हाँ-हाँ साहब, जरूर ले चलूँगा।" वह खुश होते हुए बोला।

"तो तुम 'काली-बाड़ी' के सामने शाम को चार बजे मिलना। अभी मुझे कई काम हैं। तुम्हें बीस रुपये दूँगा। इससे ज्यादा नहीं। मंजूर हो तो आ जाना।"

रिक्शा वाला कुछ देर तक सोचता खड़ा रहा फिर यकायक बोल उठा—"अच्छा साहब चलूँगा। आप चलोगे न ?"

"हाँ-हाँ, बिलकुल चलूँगा। तुम ठीक समय पर आ जाना।" मैं रिक्शे वाले से छुटकारा पाकर बाबा विश्वनाथ मन्दिर का परिदर्शन करने गली में आगे बढ़ गया। पता नहीं मन क्यों इतना उदास था कि कोई उस वक्त देखता तो आँखों के आकाश में कई परत बादल छिपे न रहते। मुझे स्वयं भी ऐसा लग रहा था कि आखिर अचानक मुझे हो क्या गया है। कारण जानने का जितना ही प्रयत्न करता, उतना ही विचारों के भँवर-जाल में बँधा-सा बहने लगता। कलकत्ते में मैं तीस साल से भाड़ झोंक रहा हूँ। माथापच्ची करता हुआ समाचारों की दुनिया में भटकता रहा। जहाँ कहीं से हो, कुछ-न-कुछ चटपटी कहानी नमक-मिर्च लगाकर अखबारों में छपने के लिए लिखा। संवाद बनाया। कहानी बनाई। टिप्पणी बनाई। कला समीक्षक से विशेष संवाददाता बना। कितने ही बिन्दुओं पर मैंने अपने

साथ समझौते किए, कितने ही अवसर पर किसी नेता या मन्त्री के साथ प्रश्नोत्तर के समय लगा है कि मैं समय के पीछे घिसट-घिसट कर चल रहा हूँ और मेरी आँखों के सामने समय तेजी के साथ भाग रहा है। मैं उसके साथ चल पाने में असमर्थ अनुभव कर रहा हूँ। आज काजल को अचानक इस वैभवशाली परिवेश में देखकर मुझे अपने होने पर घटियापन लगने लगा। सम्भवतः हीन भावना से ग्रसित होने के कारण ही काजल के प्रति मेरे मन में जो दया घर कर रही थी, उसे टूट-टूटकर बिखर जाते देख आश्चर्य हो रहा था। मुझे यह भी लगा कि बनारस में काजल अब भी स्मगलिंग के धन्धे में लगी है अथवा कालाबाजारी से कमाए गए पैसों से ऐश कर रही है। भले ही गलत कदम हो, काजल ने अपने अतीत के ऊपर विजय प्राप्त कर ली। अतीत के ऊपर विजय पाने के लिए ही हम वर्तमान से संघर्ष करते हैं। अच्छे, सुनहरे, मनपसन्द भविष्य के लिए। मुझे यकायक लगा कि मैं काजल से कहीं ईर्ष्या तो नहीं कर रहा हूँ। बाबा विश्वनाथ का मन्दिर सामने आ गया। घण्टों की आवाज, भक्तजनों के स्तवन-गान, पण्डों के स्तुति-मन्त्रों के बीच में भोले बाबा के मन्दिर में पहुँच कर दूर एक चबूतरे पर जाकर बैठ गया। कई पण्डे मेरे पास दौड़े आए। सबसे मैंने कहा—"बहुत थक गया हूँ। मैं अभी कुछ देर तक शान्ति से यहाँ बैठूँगा।" पण्डों की आँखों में आश्चर्य-मिश्रित कौतूहल था कि मैं कैसा अधम पातकी तीर्थयात्री या बनारस-निवासी हूँ। एक पण्डे की आवाज से मैं चौंक उठा—"बाबूजी, बाबा को भोग लगा दो। पूजा-अर्चन कर लो। कहाँ से आए हो?" मैंने देखा वह बूढ़ा पण्डा, गौरवर्ण, भव्य ललाट, साठ साल के आसपास का रहा होगा। खूब स्वस्थ शरीर। घी, दूध, मेवे छककर खाया हुआ। माथे पर त्रिपुण तिलक, गले में यज्ञोपवीत, सिर पर लम्बी चुटिया। वह मेरी ओर देख रहा था। मैंने कहा—"मैं थोड़ी देर यहाँ बैठकर अकेले ध्यान-मनन करना चाहता हूँ।" हालाँकि ध्यान के बारे में मुझे क ख ग भी नहीं मालूम। वह चुपचाप आँखों में रोष और आश्चर्य लिए हुए दूसरी ओर चला गया। शिवलिंग पर भक्तों द्वारा चढ़ाए जाते हुए फूल, बेलपत्र, नारियल, गंगाजल, बताशे, तरह-तरह की मिठाइयाँ, मेवे, फलों का अम्बार देखकर मन में सोचने लगा, सभी देवताओं से अधिक

निराले, उदारमना, औघड़ देवता शिवजी ही हैं। पुष्प-फल न मिले तो बेल-पत्र या धतूरे के फूल या फल को ही प्रणामी के रूप में उन्हें समर्पित किया जा सकता है। वे इससे ही खुश हो जाते हैं। दूसरे देवता, जिनके पूजन इतने ठाट-बाट से किए जाते हैं, उनकी तुलना में शिवजी कम खर्चीले हैं। थोड़े-से प्रसाद से ही वरदान देने वाले बाबा, जगत का कल्याण करने वाले विषपायी शिव को मैंने मन ही मन नमस्कार किया। चबूतरे से उठकर चलने लगा तो फिर वही स्वस्थ, सुन्दर डील-डौल, गौरवर्ण बूढ़ा पण्डा आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। व्यंग्य में होंठ फैल गए—

"क्यों, हो गया पूजन ? कहाँ से आए हो बाबू ?" मैं उसे क्या उत्तर देता। बचपन में मेरी माँ ने मुझे सिखाया था, मन्दिर में और श्मशान में ज्यादा बातें नहीं करते। सो बिना कोई उत्तर दिए मैं बाहर निकल आया। पीछे से पण्डे की आवाज आई थी—"पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते हैं। पापी लोग। जय शिवशंकर भोले, लगता है कोई नास्तिक है।" मेरा मन हुआ कि पीछे लौटकर पण्डे की चुटिया पकड़ कर पूछूँ—पण्डे के हाथ में दान-दक्षिणा देने पर ही आदमी आस्तिक हो जाता है क्या ? लेकिन मेरा मूड ऐसा करने के पक्ष में नहीं था। अनमने मन से माँ अन्नपूर्णा के मन्दिर के सामने से होता हुआ विश्वनाथ गली से बाहर निकल आया। सामने चौड़ी सड़क थी। ताँगे, रिक्शों का जमघट। बीच में इक्का-दुक्का प्राइवेट मोटरें या टैक्सियाँ दर्शनार्थियों को लेकर आ-जा रही थीं। मेरे बायीं ओर दशाश्वमेध घाट जाने का रास्ता और दायीं ओर गोदौलिया चौरस्ता चौक का रास्ता। मन कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था, किधर जाऊँ। उसी उधेड़बुन में बनारस के सुप्रसिद्ध घाट यानी दशाश्वमेध घाट की ओर चल पड़ा। दिन के ग्यारह बजे थे। धूप तेज थी। मुझे अनुभव हुआ कि जाड़े की दोपहर भी बनारस में गर्म होती है। पैदल चलकर मैं हनुमान मन्दिर के सामने से होता हुआ बरगद के पेड़ की छाया में सीढ़ियों पर जा बैठा। मुझसे कुछ दूर एक साधु बाबा धूनी रमाए बैठे थे। लाल कपड़े पर नीले अक्षरों से लिखा था 'श्री प्रज्ञानन्द महाराज सत्संग सभा'। सामने गंगा चपल आवेग के साथ बह रही थी। बनारस में उनका विस्तार इतना चौड़ा हो जाता है, यह मैं पहली बार

देखकर आश्चर्य कर रहा था। असंख्य नावें दोनों घाटों की ओर जा रही थीं। घाट पर कई बजरे, हाउस बोट स्थिर खड़े थे। दशाश्वमेध घाट पर मीलों तक छतरी के नीचे चौकी, चौकी पर पण्डे, स्नानार्थियों की भीड़। बाबा को घेरकर पाँच-सात भक्त बैठे थे। बाबा के उपदेश देने का लहजा और हिन्दी उच्चारण सुनकर मुझे लगा कि बाबा बंगाली हैं। उत्सुकतावश उठकर मैं उनके करीब जाकर बैठ गया। बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछें। कन्धों के नीचे पीठ छूती जटाएँ। मृगछाला पर गेरुआ लुंगी और चोला पहने बाबा पाल्थी मारे बैठे थे। ध्यान-मुद्रा में। मुझे उनका मुँह देखकर लग रहा था, इन्हें मैंने कहीं देखा है। फिर उत्सुकतावश मैंने पूछा—"बाबा, आप बंगाली हैं?" बाबा जैसे चौंक उठे। मुझे ध्यान से देखा। आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर तक उसी मुद्रा में बैठे रहे। फिर मुझसे पूछा—"बेटा, तुम अमिताभ हो न? कलकत्ता से आए हो?" "हाँ, पर आप मुझे कैसे पहचान रहे हैं?" मैं आश्चर्य से बाबा की ओर देख रहा था और साधु-महात्माओं के दिव्यज्ञान से सीधा साक्षात्कार कर रहा था।

"इधर कैसे आना हुआ?" उन्होंने दोबारा प्रश्न किया।

"आप तो अन्तर्यामी हैं बाबा!" मैंने कहा। बाबा मौन हो गए। उनसे अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर मैंने पूछा—"बाबा, आप मेरा नाम कैसे जानते हैं?" स्वर, लहजा और मुखाकृति जानी-पहचानी लग रही थी। मेरे दिमाग में एकबारगी कौंध गया—"बाबा, आप उत्तरपाड़ा से आये हैं? आप काजल के पिता हैं न? श्री सुधांशु चटर्जी?"

बाबा मर्माहत हो उठे। चिन्ता की रेखाएँ माथे पर फैल गईं। इस बार आँखें नीचे किए हुए ही उन्होंने कहा—"बेटा! यहीं ठहरना। सांसारिक विषयों पर बाद में बातें करेंगे।" उन्होंने भक्तों के बीच गीता-ज्ञान पर अपना प्रवचन पुनः शुरू कर दिया—कर्मण्डे वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन्···

भक्तों के सामने उनके व्यक्तिगत सन्दर्भों के उधेड़े जाने की बात मेरे दिमाग में आई। चुपचाप बैठा गंगा के निस्तरंग जल के प्रवाह को देखता रहा। सोचता रहा, आज यह कैसा दिन है कि मुझे लगातार रहस्यमय अकल्पित घटनाओं के बीच से गुजरना पड़ रहा है। मैं सिर्फ दो बार ही

काजल के उत्तरपाड़ा वाले घर में गया था। एक बार तो उसने मुझे आमन्त्रित किया था। खाने पर। उस दिन सारा परिवार मेरे स्वागत में लगा था। इलिश मछली, बैंगनभाजा, भात, दही और रसगुल्ले आवश्यकता से अधिक खाना पड़ा था। काजल की माँ हाथ में रसगुल्ले लेकर बार-बार आग्रह करतीं—"इतना कम खाने से काम नहीं चलेगा बेटा! और लेना पड़ेगा।" खाने के बाद काजल के पिता ने गिटार बजाकर सुनायी। बचपन से ही उन्हें गिटार का शौक है।

काजल की आठ वर्षीया छोटी बहन अनुराधा मुझे अपने हाथ से बनाई हुई गुड़िया दिखाकर खुश हो रही थी—"अमित दा, आप मेरी गुड़िया की शादी में आयेंगे न?" और काजल मेरे आने से खूब खुश थी। एक गरीब मध्यवित्त परिवार का मुझ जैसे अधम मेहमान के प्रति आवश्यकता से अधिक लाड़-प्यार देखकर मैं आत्म-अभिभूत हो उठा था। मन-ही-मन सोचा—उस दिन की काजल और आज की काजल में जमीन-आसमान का अन्तर है। पर उसने आज भी अपने पिता के बारे में कुछ बताया नहीं कि वे यहीं बनारस में रहते हैं। संन्यासी हो गये हैं।... शायद सब कुछ जानती हो।

एक आश्चर्य-जगत से दूसरे आश्चर्य-जगत में प्रवेश करते हुए मुझे आज की घटनाओं के बारे में सोचकर यही लग रहा था, जैसे रहस्यमय अन्धकार के बीच से निकलकर ये सारे पात्र यहाँ बनारस में मुझसे मिलने आ गये हैं। बचपन में प्रेतों और अरेबियन नाइट्स की कहानियाँ पढ़ी थीं। उनमें अनदेखी अनबूझ बहुत-सी तिलस्म बातें हैं पर यहाँ तो मेरी आँखों के सामने जिन्दा मनुष्यों की वास्तविक जिन्दगियाँ थीं। जीवन के उत्थान-पतन के बीच उसकी विभीषिका स्पष्ट दिखाई दे रही थी। बाबा की आवाज से मैं धरातल पर उतर आया—"बेटा, तुम यहाँ किस काम से आए हो?"

"आफिस के काम से। अखबार के लिए कई लोगों से इण्टरव्यू लेना है।" मैंने उन्हें बताते हुए यह सोचा कि क्यों न अपना एक 'फीचर' दशाश्वमेध घाट के इन औघड़ बाबा से ही शुरू करूँ।

"कहाँ ठहरे हो?"

"जी, काली-बाड़ी में ।"

"कब तक रहोगे ?"

"कुछ ठीक नहीं, फिर भी यही दो-तीन दिन ।" फिर अपनी आतुर उत्सुकता को और अधिक देर तक काबू में न रख पाते हुए बाबा से मैंने पूछा—"आपको इस हालत में देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है । कब से संन्यास लिया आपने ?"

"बेटा, यह दुनिया आश्चर्यजनक घटना-स्थल है । मैं संन्यास न लेता तो शायद आत्महत्या करनी पड़ती । आत्महत्या को मैं आदमी का घोर अकर्मण्य और निन्दनीय कार्य मानता आया हूँ । हरे राम, हरे कृष्ण । तुम सब कुछ जानता चाहते हो, तो सुनो । बेकबागान में मेरे मित्र संदीप चोपड़ा रहते हैं । एक विज्ञापन कम्पनी में मैनेजर हैं । बहुत उन्नति की है उसने । एक दिन घर में ऊब रहा था । सोचा, कलकत्ता घूम आऊँ । गोलपार्क रामकृष्ण मिशन गया, वहाँ से मिस्टर चोपड़ा के घर । बातों-बातों में विज्ञापन सम्बन्धी एलबम दिखलाने लगे । कैसे-कैसे किन-किन कम्पनियों के लिए उन्होंने प्रचार-सामग्री बनाई और हजारों-लाखों कमाया। उस एलबम में बहुत सारी लड़कियों के तरह-तरह के चित्र थे । कुछ नग्न, कुछ अर्धनग्न । उस चित्रों के बीच एक ऐसी लड़की दिखाई दी जिसके बारे में सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा । वह मेरी ही बेटी काजल का अर्धनग्न चित्र था । काजल ने कभी मुझसे नहीं बताया कि वह किसी विज्ञापन कम्पनी में मार्डलिंग का काम करती है । इस तरह गन्दे पोज देकर पैसा कमाती है । मैं सीधा-सादा आदमी ठहरा । हमेशा सच्चाई और ईश्वर में विश्वास करता रहा । मेरी ही बेटी झूठ बोले, गलत ढंग से धनोपार्जन करे और मुझे इसके बारे में जरा भी पता नहीं ! अनजान बनने का नाटक करते हुए मैंने चोपड़ा से पूछा—"यह लड़की कौन है ? तुम इसके बारे में बता सकते हो ?" चोपड़ा के होठों पर अर्थपूर्ण कुटिल मुस्कान खिल उठी । उसने उल्टे मुझसे पूछा—"तुम्हें इस एलबम में यही लड़की पसन्द आई ? बड़ी सेक्सी है ।" उसकी इस बात पर मैं उत्तेजित हो उठा । मेरा दिमाग उस समय फटा जा रहा था । बेटा ! तुम्हें कैसे बताऊँ कि ऐसे समय एक बाप की कैसी मनःस्थिति होती है, जब कि वह यह समझ ले कि

उसकी लड़की गन्दा धन्धा करती है। माँ-बाप से झूठ बोल कर आफिस में काम करने के बहाने बनाकर दिन-भर घर से बाहर रहती है। चोपड़ा ने दोबारा मुझसे पूछा था—"क्या बात है चटर्जी, बहुत परेशान लगते हो ? यह लड़की मेरी कम्पनी में कभी-कभी आती है। माडलिंग का काम करने। बहुत होशियार और स्मार्ट है। ठहरो, मैं उसका अता-पता अभी बताता हूँ।" चोपड़ा ने फाइल खोजते हुए हताश होकर कहा—"ना। उसने कभी अपना पता नहीं बताया। एक दिन कह रही थी, अकेली है। कहीं हिन्द मोटर्स की तरफ रहती है।" मैं उठ खड़ा हुआ। बेजान दिल और दिमाग से 'बेकबगान' से पैदल ही चलता हुआ 'हावड़ा' कब पहुँच गया इसका मुझे आभास तब हुआ जबकि 'हावड़ा पुल' पर घरघराते हुए ट्राम के नीचे दबते-दबते बचा। मुझमें हिम्मत नहीं रह गई थी कि वापस घर जाऊँ। दोबारा काजल का मुँह देखूँ। बस, उस क्षण पता नहीं मुझे क्या हो गया था। तेज कदमों से 'हावड़ा स्टेशन' पर जाकर एक दूरगामी ट्रेन में बैठ गया। जिस ट्रेन पर बैठा वह सीधे बनारस आती थी। और आज दस वर्षों से मैं दशाश्वमेध घाट पर गंगा मैया की धारा को देखते हुए अपने जीवन के अन्तिम दिन बिता रहा हूँ। मैं कोई सिद्ध संन्यासी नहीं हूँ बेटा ! जीवन से निराश, अपराध-बोध से ग्रस्त, छोटे से मनुष्य के रूप में इस देव-नगरी में रहता हूँ। पर बेटा, काजल से तुम जरूर मिलते होगे, उसे बताना नहीं मेरे बारे में। आज सोचता हूँ कि उसने जो कुछ किया, अपने लिए नहीं, परिवार की भलाई के लिए। मैं आज उसके गलत रास्ते पर जाने का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। विश्वास है इस बात को तुम गुप्त ही रखोगे।" कहते-कहते उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगीं। फिर सुबकते हुए बोले—"उस छोटी-सी नन्ही-सी गुड़िया अनुराधा के बारे में हमेशा सोचकर अशान्त रहता हूँ—पता नहीं कहाँ, किस हाल में होगी।"

मैंने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"आप दुखी मत हों। आपको एक मंजिल प्राप्त हो चुकी है। यही आपका सबसे बेहतर जीवन है। अतीत को भूल जाएँ। काजल जहाँ भी है खुश है, सुखी है। अनुराधा भी।"

"हाँ बेटा, बेहतर जीवन कह सकते हो। पर तुम नहीं जानते, कितनी

तकलीफें, कितनी मुसीबतों के बीच से गुजरा हूँ मैं। काशी ने मुझे बचा लिया, अपना लिया, नया जीवनदान दिया। बाबा विश्वनाथ सचमुच महान हैं। इस स्थान पर मेरी आत्मा को जितनी शान्ति मिलती है, उतनी कहीं नहीं। मैं मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, बद्रीनाथ, रामेश्वरम् सभी तीर्थ घूम आया, परन्तु काशी सबसे न्यारी, सबसे निराली है। भगवान शंकर की कर्मभूमि है न। भगवान शंकर···भोले काशी विश्वनाथ···" वे सिसक-कर रोने लगे। काफी देर तक रोते रहे। तभी कुछ भक्तजन आ गए। भक्तों के सामने आराध्य रोए, ऐसा नहीं चल सकता। वह अन्दर से भले ही रो ले, पर बाहर से प्रसन्नचित्त दिखाई देना ही उसके लिए कल्याणप्रद होता है। मुझे उन्होंने प्रसाद दिया। पेड़े, लड्डू, संतरे। मुझे काजल के यहाँ दोपहर पर लंच की बात याद हो आई। फिर भी थाली में से दो-चार पेड़े लेकर खाने लगा। उन्होंने कमंडल मेरी ओर बढ़ा दिया—"पानी पी लो। कुछ देर विश्राम करो, फिर आश्रम ले चलूँगा। यहीं हनुमान मन्दिर के पीछे है। थोड़ी ही दूर।" वे भक्तों की पूजा स्वीकार करने तथा धर्म-चर्चा में लग गए तो मैंने उनसे कहा—"अच्छा बाबा, अब विदा दें। मैं शाम को फिर यहाँ आ जाऊँगा। अभी मुझे कुछ जरूरी काम करने हैं। प्रेस के लिए मैटर भेजना है।"

"अच्छा बेटा! जैसी तुम्हारी इच्छा। पर आना जरूर। बिना मिले कलकत्ता जाना मत।" मैं उठकर चलने लगा तो बोले—"आओगे न? आज पूर्णमासी है। आश्रम में भजन-कीर्तन का आयोजन है। तुम कालीबाड़ी में अकेले क्यों पड़े हो। आश्रम में ही अपना सामान लेते आना। वहीं जितने दिन चाहो रहो। आज इतने दिनों बाद तुम्हें देखकर प्रसन्नता हुई। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। तथास्तु। हरिओम तत्सत्।" बाबा प्रज्ञानन्द से विदा लेकर मैं चल पड़ा काजल की कोठी की ओर। मन को एक बात बार-बार कोंच रही थी कि बाबा के बारे में उससे बताऊँ या नहीं। शायद काजल कभी दशाश्वमेध घाट पर आई नहीं। आती तो उसके पिता उसे अवश्य मिल जाते। इस विषय पर मैंने सोचते हुए रिक्शे वाले को बुलाकर कहा—"मालवीय नगर चलोगे?" "दो रुपये लगेंगे"—रिक्शे वाले ने अनमने मन से कहा। वह काफी थका हुआ लग रहा था। "दूँगा

दो रुपये चलो।" कहकर मैं रिक्शे पर बैठ गया। घड़ी देखी। एक वज रहा था। पहुँचने में पन्द्रह मिनट तो लग ही जायेंगे। काजल मेरी ही प्रतीक्षा कर रही थी। मेरे पहुँचने पर काजल ने अनुराधा से परिचय कराते हुए कहा—"अनू, देखो तेरे काकू अमिताभ बाबू! याद हैं न, उत्तरपाड़ा वाले मकान में दो बार आए थे। तब तू जरा-सी थी। गुड़ियों की शादी का निमंत्रण काकू को दिया था, पर खाना दस साल बाद खिलाने जा रही है।" अनुराधा ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मैंने उसके गाल पर हल्का-सा चपत लगाते हुए कहा—"सचमुच गुड़िया सयानी हो गई है।"

मैं अनुराधा को देख रहा था। अठारह वर्ष की गौरवर्ण स्मार्ट लड़की बनारसी साड़ी में सजी-सँवरी सुन्दर लग रही थी। मैंने उससे हँसते हुए पूछा— 'तू तो गुड़िया बनाते-बनाते स्वयं गुड़िया बन गई। एक सुन्दर-सी गुड़िया।" वह शरमा गई। दूसरे ही क्षण बोली—"आपको साड़ी में मैं कैसी लगती हूँ? दीदी ने आज जबर्दस्ती पहना दी।"

"बहुत सुन्दर लगती हो साड़ी में। मैंने तो तुम्हें नन्हे-से फ्राक में भी देखा है।"

"तब हाथ मिलाइए।" उसने तपाक से मुझसे हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ा दिया। मैंने कहा—"किसलिए भला?"

"दीदी बोलती हैं कि मुझ पर जीन्स और पंजाबी चूड़ीदार अधिक अच्छा लगता है।" मैं हँस पड़ा।

काजल से मैंने कहा– "क्यों बहन को आधुनिक बनाने पर तुली हो। साड़ी में ही भारतीय लड़कियाँ सुन्दर लगती हैं। खासकर बंगाली लड़की तो साड़ी के अलावा किसी भी कपड़े में सुन्दर नहीं लगती।"

काजल अनुराधा को डाँटते हुए बोली—"क्यों री! भला मैं क्यों तुम्हारे फैशन में बाधा डालूँ। जो अच्छा लगे पहनो। खड़ी-खड़ी बस बातों से पेट भरेगी या खाना भी खिलाएगी।" अनुराधा जाने लगी तो काजल ने कहा—"चलिए हम डाइनिंग रूम में ही बैठें। आपको खूब भूख लगी होगी।"

आगे-आगे काजल, पीछे मैं और मेरे पीछे अनुराधा चलकर डाइनिंग रूम में पहुँच गए तो अनुराधा ने मुझे टेबुल के बीचोबीच कुर्सी खींचकर

बिठा दिया। काजल सामने बैठी। अनुराधा मेरी बगल में बैठकर टेबुल पर सजा खाना मेरी प्लेट में परोसने लगी। दो वर्दीधारी नौकर उसकी मदद के लिए दौड़े आए तो उसने उन्हें मना कर दिया। वे जाकर दो तरफ खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे कि कब उन्हें किसी काम के लिए आर्डर मिले। मैं अब तक काजल के चेहरे को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। मेरे दिमाग में उसके पिता सुधांशु चटर्जी उर्फ स्वामी प्रज्ञानन्द द्वारा दिया गया वादा चक्कर काट रहा था। सूप का पहला चम्मच मुँह तक ले जाते हुए मेरे मुँह से निकल गया—"काजल, तुम्हारे पिता कैसे हैं? कभी उत्तरपाड़ा भी जाती हो?"

काजल के हाथ प्लेट में सलाद रखते हुए जैसे जड़ हो गए। आँखें नीची किए हुए मौन भाव से मेरी ओर ताका। अनुराधा मुझे और काजल को साश्चर्य देख रही थी। कुछ क्षण के बाद काजल का मौन टूटा—"जानकर क्या करोगे? खा लो, तब बताऊँगी।"

मैंने देखा, उसके द्वारा बोले गए प्रत्येक शब्द से दुःख झलक रहा था। मुझे अन्दर से ग्लानि हो रही थी कि खाते समय मुझे उसकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए थी। फिर भी मन के चारों ओर उठती रहस्यमयी दीवारों को तोड़ने के लिए मैं उत्सुक, अधीर था। मैंने देखा, काजल ठीक से खा नहीं पा रही है। चेहरे पर चिंता की रेखाएँ फैल गई हैं। पूरे माहौल पर उसकी उदासी के कारण खामोशी छाई हुई है। उस उदासी को तोड़ने के विचार से मैंने अनुराधा से पूछा था—"अब भी गुड़ियों से खेलती हो कि नहीं?"

"खेलने की बड़ी इच्छा होती है, पर दीदी कहती हैं अब मैं बड़ी हो गई हूँ। गुड़ियों का खेल बन्द कर दूँ। पढ़ाई में मन लगाऊँ। अब मैं खेलती भी नहीं। सबको उठाकर आलमारी में बन्द कर दिया है। पढ़ाई से समय भी नहीं मिलता।"

"अरे-रे, यह क्या किया? आलमारी में कहीं गुड़ियों को बन्द किया जाता है भला! अब तो समय आ गया है, आलमारी में गुड्डे को बन्द करना पड़ेगा और गुड़िया स्वतन्त्र होकर नाचेगी, गाएगी।" मैंने यह सब कुछ सिर्फ काजल का मूड ठीक करने के उद्देश्य से कहा था।

"जैसे आप !" अनुराधा ने आँखों में शरारत-भरी मुस्कान लिए उँगली उठाकर मेरी ओर इशारा किया।

"हाँ, जैसे मैं।" कहते हुए मैं हँस पड़ा। मैंने देखा काजल के होठों पर भी मन्द मुस्कान फैल गई। मैं वातावरण को हल्का बनाने के लिए अनुराधा से बी०एच०यू० के बारे में, उसकी पढ़ाई के बारे में पूछता रहा। खा चुकने के बाद हम बैठकखाने में आकर बैठ गए। काजल ने मुझसे पूछा—"आज कहाँ-कहाँ घूमे ?"

मैं इस प्रश्न से हतप्रभ हो गया। कुछ समझ में नहीं आया कि ठीक-ठीक बता दूँ या कुछ इधर-उधर की बातें कहकर छुटकारा लूँ। इसी उधेड़बुन में मुँह से निकल पड़ा—"बाबा का दर्शन किया।"

"यहाँ तो बहुत सारे बाबा हैं। किस बाबा का ? बाबा विश्वनाथ ? बाबा काली कमली वाले ? बाबा गोरखनाथ ? लंगोटी बाबा या बाल्टी बाबा ?"

मैंने सोचा उसी के साथ मिला दूँ—"बाबा प्रज्ञानंद।" परन्तु बाबा प्रज्ञानंद को दिए गए वचन याद आ गए—'नहीं बताऊँगा आपके बारे में।' मैंने काजल से कहा—"बाबा विश्वनाथ सचमुच बड़े औघड़ देवता हैं। मन्दिर भी अनोखा है।"

"और भी सुन्दर मन्दिर था। परन्तु औरंगजेब ने तोड़-फोड़ डाला। अब तो असली मन्दिर की जगह ही बदल गई है। किंवदन्ती है कि जहाँ पहले असली मन्दिर था, वहीं मस्जिद बनी हुई है। औरंगजेब ने बनवाई थी।"

"फिर भी मन्दिर जहाँ है वहीं सुन्दर है। जहाँ प्यार, वहाँ दीदार।"

"बस मन्दिर ही देखा या और कहीं गए ? सवेरे तो कह रहे थे बहुत सारे काम हैं। लगता है, अखबारी समाचार नहीं जुटाना है अब।"

"मैं तो उसी के लिए कलकत्ता से चलकर इतनी दूर आया हूँ। परन्तु आज कुछ ऐसा संयोग हुआ कि जिनसे मिलने जाना था, नहीं जा सका, और जिनसे मिलने के बारे में कभी सपने में भी नहीं सोचा था, वे यहाँ अचानक मिल गए।"

अनुराधा अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में ढेर सारा प्रश्न लिए मेरी ओर

देख रही थी। काजल ने ही पूछा—

"कब तक का प्रोग्राम है बनारस में ?"

"बस, परसों चला जाऊँगा। डिलक्स से रिजर्वेशन भी हो चुका है। स्टेशन पर पहुँचते ही करा लिया था।"

"कुछ दिन और रुक जाओ। अनुराधा की बड़े दिन की छुट्टियाँ हो रही हैं। इसी सत्रह से। हम प्रयाग और आगरा जायेंगे। आप भी चलिए।"

मैंने कहा—"इतना भाग्यशाली मैं नहीं कि दो सुन्दर महिलाओं के साथ सैलानी बन सकूँ। मैं तो एक अखबार में किरानी हूँ। सिर्फ तीन दिनों के लिए ही भेजा गया हूँ। कलकत्ता पहुँचने पर दिल्ली जाना है। तटस्थ राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन के अवसर पर।"

"दिल्ली जाने का कार्यक्रम आप हमें लिखकर जरूर भेज दीजिएगा। हम दोनों ने भी दिल्ली नहीं देखी। आपके साथ घूमेंगे।"

"हाँ, यही ठीक रहेगा।" मेरे दिमाग में बातों के बीच में प्रज्ञानंद बाबा का चेहरा कई बार उभरा। पत्रकार-स्वभाव से लाचार मैंने अपने दिमाग में घुमड़ते प्रश्न को दोबारा पूछ लिया—"तुम कुछ बता रही थीं अभी बाबा के बारे में···।"

"हाँ।" काजल ने कुछ सोचते हुए कहा। फिर अनुराधा से काफी बना लाने का अनुरोध किया तो मुझे लगा, उसने अनू को अभी तक बाबा के बारे में कुछ बताया नहीं। और यही बात सच निकली। काजल ने बताया—"देखिए, अनू जानती है कि बाबा का एक्सीडेन्ट हो गया है परन्तु ऐसा नहीं है। बाबा अभी जीवित हैं। शायद मेरे चरित्र के बारे में कुछ उल्टा-सीधा समझकर घर छोड़कर कहीं चले गए हैं।"

"यह तुम कैसे कह सकती हो ?"

"मेरा मन बोलता है। काश ! बाबा समझ पाते कि मैंने परिवार के लिए, बीमार माँ के लिए, अनू के लिए गलत रास्ते पर कदम उठाया था। इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं था।" काजल बिखर कर अचानक रोने लगी। उसे रोता देखकर मेरा मन हुआ कि काजल से कह दूँ, बाबा अभी जिन्दा हैं और यहीं बनारस में ही हैं। स्वामी प्रज्ञानंद के नाम से

प्रसिद्ध हैं। परन्तु दूसरी बार बाबा को दिए गए वचन मेरे दिमाग पर तन कर खड़े हो गए।

"काजल ! धीरज रखो। तुमने परिवार के लिए अपने को समाप्त कर दिया। यह तुम्हारा बहुत बड़ा आत्म-बलिदान है। चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायगा।"

"अमित बाबू, आज आपके सामने मैं अपनी अन्तर-व्यथा के बारे में बताते हुए राहत महसूस कर रही हूँ। आप दस वर्षों से मुझे जानते हैं और एक अनकही बात मैं आपसे कहना चाहती हूँ। मैं आपको एक आदर्श व्यक्ति मानती आई हूँ। जिस दिन हमारी पहली मुलाकात हुई थी, याद है न ? आप अन्य पुरुषों की तुलना में कहीं अलग दिखाई पड़े थे। उसी दिन से मैं आपका आदर करने लगी हूँ। आपको मेरे बारे में सब कुछ जानकर पता नहीं कैसा लगता होगा कि गलत रास्ते पर चलते-चलते काले धन्धे की सीढ़ियों पर आ खड़ी हुई हूँ। परन्तु यह सब हठात् ही हुआ। मैं कभी-कभी स्वयं आश्चर्य करती हूँ कि घटनाओं के काले सागर की लहरों में मेरी जिन्दगी की नाव डगमग करती कहाँ से कहाँ पहुँच गई।" अब तक अनुराधा दो प्यालों में काफी लिए आई और एक प्याला मेरे और दूसरा काजल के सामने रख दिया। मैंने पूछा—"और तुम्हारी काफी ?"

"जी, मैं काफी नहीं पीती।"

"लड़कियों को 'स्लिम' बने रहने का शौक होता है। गर्म पेय पीने से उनकी सुन्दरता झुलस जाती है। है न यही बात ?" मैंने चुटकी ली। अनुराधा हँस पड़ी। मैंने देखा, दोनों बहनों के मुँह की बनावट में बहुत साम्य है। अनुराधा भी काजल की तरह जब हँसती है तो दाँतों की पंक्तियाँ चमक उठती हैं। गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं।

काफी पीकर मैं चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। काजल ने कहा—"कुछ देर और नहीं बैठ सकते ?"

"ना। आज दिन-भर से मैंने कोई काम नहीं किया। अब चलता हूँ। फिर कल या परसों आ जाऊँगा।"

कहा तो मैंने औपचारिकतावश ही था, पर क्या पता कि काजल

इसका बुरा मान जाएगी। उसने उठते हुए कहा—"आपको यहाँ अपनापन नहीं लग रहा है न, इसीलिए ऐसा शिष्टाचार दिखा रहे हैं।"

"नहीं ऐसी बात नहीं, काजल ! हम आधुनिक सभ्यता से जकड़े हुए हैं। पग-पग पर औपचारिकता का नाटक करते-करते समय-असमय वही नाटक अपनों से भी दोहराते रहते हैं।"

"आप परसों तक हैं न ? कल रात को डिनर पर आ जाइए।"

काजल के बोलने के साथ-साथ अनुराधा भी बोल उठी—"हाँ अमित दा, कल जरूर खाने पर आइए। मैं आपके लिए स्पेशल 'डिश' बनाऊँगी। बनारसी दाल-पूड़ी। आज मोहन भोग आपको अच्छा लगा था न। मैं कल कुछ खास 'डिश' बनाऊँगी।

"अच्छा। तब तो आना ही पड़ेगा। बनारसी लड़की के हाथ से बनारसी 'डिश' खाना बड़े भाग्य की बात है।

"भला मैं कब से बनारसी लड़की हो गई ? मैं तो 'उत्तरपारी' हूँ।"

"उत्तर प्रदेश में 'उत्तरपारी' ब्राह्मणों की बड़ी पूँछ होती है।"

हम तीनों ठहाका लगाकर हँसने लगे।

विदूषक 'बार' में आकर नाचने लगा।

फिर गाने लगा सुर, ताल, लय में—

शहर-दर-शहर भटकता
फुटपाथ-दर-फुटपाथ बदलता
अँधेरे और उजाले के बीच
भेष बदल, स्वर बदल, राग बदल, दल बदल
बदलता आत्मसत्ता का इतिहास

कभी कलकत्ता, कभी वम्बई, कभी दिल्ली, कभी मद्रास; कभी अमृतसर, कभी रामेश्वरम्, कभी वृन्दावन, मथुरा, अयोध्या, गोकुल ग्राम। कभी प्रयाग, काशी, कुरुक्षेत्र, कालीघाट, जगन्नाथ धाम...। विदूषक नाचने लगा। पाँव में घुँघरू और हाथ में इकतारा। फूट पड़ी उसके होठों पर सायास सुमधुर तान। प्रगतिवादी, जनवादी संगीत-सुधा धारा—

प्यारे भाई, सखा, बन्धु, भारत की सन्तान
हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, क्रिस्तान
'हैपी न्यू इयर्स' नया साल शुभ हो।
सर्वे भवन्तु सुखिन।
सर्वे सन्तु निराभय।
बोलो जय जय बम भोला
सारी दुनिया बराबर एक एटम बम का गोला
गाओ गाओ शान्ति का गीत
युद्ध की हार और क्रान्ति की जीत।

विदूषक गाते-गाते, नाचते-नाचते 'बार' से बाहर चला गया। चला क्या गया, गया होगा किसी दूसरे फुटपाथ पर भीड़ जुटाने, कला दिखाने। उसके गाने की आवाज उभर रही है—

मेरे सपने छीन जाता भाई कोई तो बचाओ
मेरा हृदय लिए जाता भला कोई तो बचाओ
आकाश लिए जाता भला कोई तो बचाओ
संत्रास दिए जाता भाई कोई तो बचाओ
बचाओ बचाओ बचाओ।

अकसर मैंने देखा है विदूषक धीरे-धीरे गीत समाप्त करता। 'इकतारा' गले से लटका लेता। भीड़ को नमस्कार करता और प्रस्थान कर जाता। कहीं किसी दूसरे फुटपाथ पर या किसी होटल, 'बार' में अचानक प्रकट होकर चिर परिचित गीत सुनाता।

'बार' में कितने धर्मों, वर्णों के लोग आते हैं। कितने सारे मुखौष

पहन, असली, नकली चेहरे। कितने सारे जीवन के खण्डित इतिहास लिए। कितना कुछ अतीत गले से लगाए। कितने सारे सन्दर्भों, अतीत को कलेजे से चिपकाए अथवा भोगते संत्रास। घुटन। भोगते सम्बन्धों का विघटन। मैं सोच रहा था विदूषक के बाद इस आदमी के बारे में, जो मेरे सामने बैठा है। अन्दर से अशान्त। मुझे उसके प्रति सहानुभूति हो आई। काजल के लिए अपनी आत्मीयता प्रकट करने तथा कुछ और जानने की उत्सुकता के कारण ही शायद मैंने सिगरेट का पैकेट उसके सामने बढ़ा दिया—"लो!"

उसने पैकेट से निकाल कर एक सिगरेट मुँह में लगा ली तो मैंने ही माचिस जलाकर उसकी ओर बढ़ा दिया। खूब गहरा कश लिया था उसने, फिर बार की खिड़की में सजाए कैक्टस की ओर देखते हुए कुछ सोचता बैठा रहा। अब तक 'बार' में भीड़ बढ़ गई थी। सामने की टेबुल पर बैठे जोड़े आपस में जोरों से बातचीत कर रहे थे। लड़की नशे में बहक रही थी, क्योंकि आवश्यकता से अधिक हँस रही थी। बीच-बीच में किसी बात पर वह चीख उठती। स्टेज पर 'बीटल' संगीत शुरू हो चुका था। चार लड़के अँग्रेजी धुन पर गा रहे थे। थिरक रहे थे। वाद्ययंत्रों की आवाज इतनी तेज थी कि हम आपस में बातचीत नहीं कर सकते थे। पास वाली टेबुल से उठकर कुछ युवक-युवतियाँ 'फ्लोर' पर नाचने लगे। 'बार' में कुछ क्षणों के लिए जैसे आनन्द की धारा बहने लगी। कुछ लोग अपनी सीटों से उठकर खड़े हो गए। कुछ तालियाँ बजाकर भटकने लगे। कुछ हाथ में 'जाम' उठाकर 'चियर्स' करने लगे। मुझे अनुभव हो रहा था कि जैसे इस एक हजार वर्गफुट के हाल में समय हाथ में आनन्द-कलश लेकर मुक्त हाथ से बाँट रहा है। जैसे दुनिया में कहीं कोई दुःख नहीं। कोई कष्ट नहीं। कोई तनाव नहीं। युद्ध के साज सरंजाम नहीं। राजनैतिक अशान्ति नहीं। धर्म, जाति, वर्णभेद की कुत्सित विभेद-नीति नहीं।

मैंने घड़ी देखी, रात के ग्यारह बजने जा रहे थे। मन ही मन अन्दाजा लगाया कि एक घंटे और बैठूँगा। बारह बजे नए वर्ष के आगमन पर हुड़दंग देखकर जाऊँगा। पर मेरे मन में जितनी उत्सुकता काजल और प्रज्ञानंद स्वामी के बारे में और अधिक जानने की थी उतनी नए साल का हुड़दंग देखने की नहीं। 'बार की रंगबिरंगी, कीमती सजावट तथा पीने वालों की भीड़ देखकर सोचने लगा, इकतीस दिसम्बर, यानी नव वर्ष की सन्ध्या भारतीय संस्कृति के किसी पृष्ठ पर नहीं दिखाई देती, फिर भी नव वर्ष की शाम इतनी धूमधाम से लोग मनाते हैं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, ईसाई या दूसरे धर्मों के लोग सभी आकंठ हर्षोल्लास में डूब जाते हैं। समूचे विश्व में नव वर्ष, नव परिवर्तन की शाम, मौज-मस्ती और जोश-खरोश के साथ मनाई जाती है। प्रथम वैशाख, दीवाली या ईद के दिन पर साल बदलने वाली बात धीरे-धीरे लुप्तप्राय होती जा रही है। जिसे ही देखो, इकतीस दिसम्बर या पहली जनवरी इतने सजधज के साथ मनाता है कि उसके सामने सारे मुस्लिम या हिन्दू तिथि-त्यौहार फीके पड़ जाते हैं। यह संस्कृति का बदलाव है। नहीं तो आज 'बार' में बैठकर मैं क्यों इस नए वर्ष की शाम को विशेष रूप से अपने खाने-पीने का बजट बनाता। और आधी रात यानी साल बदलने के शून्य-काल पर चर्च के घंटे, जहाजों के बजते साइरन, अनजाने, अपरिचित लोगों का एक-दूसरे से गले मिलने का, हाथ मिलाने का क्रम भला कैसे देखता। 'हैपी न्यू इयर्स टू यू, 'नया वर्ष शुभ हो, मंगलमय हो' की आवाजें पार्क स्ट्रीट से चौरंगी होती हुई डलहौजी के फुटपाथ पर बेतहाशा दौड़ती मोटरों के साथ भागने लगती हैं। सारा ट्रैफिक जाम हो जाता है। कारों, मोटरों का काफिला रुक जाता है। सिर पर रंग-बिरंगी टोपियाँ लगाए, सजे-धजे स्त्री-पुरुष आनन्द के अन्तहीन सैलाब में बहने लगते हैं। उस सैलाब में बहने के लिए मेरा मन आज आतुर नहीं हो रहा है। पता नहीं क्यों। शायद जिस जीवन-कथा को अभी-अभी सुना है उसी के कारण मन में आया कि मित्र से काजल के बारे में कुछ और पूछूं पर तभी मित्र ने मुझसे कहा—

"देखो, कभी-कभी क्या ऐसा नहीं लगता कि हम व्यर्थ ही जी रहे हैं। हमारा खाना-पीना, काम करना सब सिर्फ एक रुटीन है। और इस रुटीन

की खानापूर्ति के लिए ही हम जीवन-भर सारा संघर्ष झेलते रहते हैं।"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचता। यदि जीना महज एक रुटीन होता तो दुनिया में कोई प्रगति ही नहीं होती, न सांस्कृतिक, न राजनीतिक और न ही वैज्ञानिक। इस आगे बढ़ते, निरन्तर बढ़ते जाने की महत्त्वाकांक्षा को हम कर्म-बोध मानकर चलते हैं। भले ही अपरोक्ष रूप में ही हो।"

"जड़ता से हटकर कुछ करने के लिए जो भी काम किए जाते हैं, वे सब जीवन जीने के रुटीन ही हैं।"

मैं चुप हो गया। विषयान्तर के लिए पूछा—"तुम आदमी के अभ्युत्थान और पतन में विश्वास करते हो ?"

"हाँ। बिलकुल।"

"तो पतन यानी जड़ता और अभ्युत्थान यानी आगे बढ़ने के लिए एक महत्त्वाकांक्षा के बतौर काम करना। इसे ही क्रियेटिविटी कह सकते हो। जड़ से लेकर जन्तु तक इसी प्रक्रिया में चलते हैं। पर तुम अचानक ही काजल की बात से इतने भावुक क्यों होते जा रहे हो ?"

"पता नहीं। शायद एक बात मन के अन्दर कुरेद रही है कि मैंने अपने या दूसरों के लिए कुछ भी नहीं किया। इसीलिए सब कुछ व्यर्थ-सा लगता है। खासकर मेरा इस तरह से जीना।"

"व्यक्तिगत निराशा को संस्कृति या समाज के साथ जोड़ना क्या ठीक है ?"

"यह मैं नहीं जानता पर इतना जरूर कहूँगा कि व्यक्ति ही समाज बनाता है। काजल ने जो कुछ किया अपने जीवन में यानी वह भी एक तरह का समाज सन्दर्भ है। काल गर्ल, नगरवधू से गृहवधू तक के रास्ते के चारों ओर खड़े समाज को देखकर मुझे लगता है कि इस समाज में खोखले, दकियानूस, सड़े-गले आदर्शों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।"

"पैसे के लोभ और स्मगलिंग के धन्धे में पड़कर उनसे उत्पन्न स्थितियों को समाज के दायरे में नहीं रखा जा सकता।"

"तुम आदमी की असहाय स्थिति का उपहास कर रहे हो।"

मैंने देखा उसका चेहरा आवेश में तन गया। सिगरेट को मुँह से निकालकर राख ऐशट्रे में झाड़ते हुए बोला—

"इतिहासकारों, धर्मोपदेशकों ने मनुष्य की असहाय स्थिति का कभी समर्थन नहीं किया। असमर्थता को निन्दनीय, उपेक्षित मानते रहे। पर तुम तो एक लेखक हो। आदमी के उत्थान। पतन की विभीषिका को समझ सकते हो।"

मेरे ऊपर उसने प्रहार किया। जैसे कहना चाहता हो, तुम किस तरह के लेखक हो? मैं कुछ बोलता कि इसके पहले ही वह बोल उठा—"काजल की कहानी कोई साधारण कहानी नहीं। ऐसी हजारों-लाखों काजल मध्यवित्त परिवार में संघर्ष झेल रही हैं और ऐसे हजारों-लाखों सुधांशु चटर्जी, स्वामी प्रज्ञानन्द का रूप धारण कर अपने संत्रास को धर्म के रंग में रंगकर संतुष्टि पा रहे हैं। यह जीवन किसी दिन संस्कृति की रीढ़ तोड़ देगा, क्या इसका अन्दाज तुम्हें नहीं?"

"हाँ है। परन्तु अभावों को दूर करने के लिए संवेदना नहीं, कर्म की आवश्यकता होती है। काम करने की प्रवृत्ति। अपने दायरे से बाहर निकलने की चाह। संघर्षों पर विजय पाना ही आज की आधुनिकता होनी चाहिए।"

"तुम उपदेशक की तरह बातें कर रहे हो। मैं उपदेश और नेतागिरी से सख्त नफरत करता हूँ। अच्छा हो इस विषय पर हम बातें न करें।"

"देखो तुम व्यर्थ में नाराज होते हो। तर्क हमेशा तर्क होता है। वस्तुस्थिति के साथ गम्भीरतापूर्वक साक्षात्कार करने के लिए तर्क काफी नहीं होता परन्तु हम जैसे बुद्धिजीवी तर्क के आधार पर ही लिखते, पढ़ते, सोचते और जीते हैं। हालाँकि तर्क का वास्तविकता से काफी दूर का सम्बन्ध है।"

"इसीलिए मुंशियों की कमी नहीं इस देश में।"

"इसी देश में क्यों, पूरी दुनिया में आज मुंशीगिरी और चमचा-परस्ती के बल पर ही सत्ता का सारा काम-काज चल रहा है। युद्ध और विनाश के बादल छाए हैं। बड़े देशों में उठा-पटक का नाटक चल रहा है।"

"चलता होगा। मैं इसे मानसिक विलासिता मानता हूँ। इससे आदमी, देश को खरीदा जा सकता है, उसे गलत रास्ते पर ले जाने के

लिए कोई भी रास्ता अपनाया जा सकता है। सत्ता के लिए सत्ताधारी आदमी को तभी आदमी मानता है जब तक कि आदमी से सत्ता को समर्थन मिलता है। सत्ता द्वारा आदमी का निर्माण नहीं किया जा सकता। उसे गलत से गलत रास्ते पर चलने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है।"

काजल और स्वामी प्रज्ञानन्द से विदा लेकर मैं ट्रेन से कलकत्ता लौट रहा था, फिर भी रात में क्षण-भर के लिए भी सो नहीं सका। अन्दर से जैसे मन में कोई खरोंच रहा हो। चित्त अस्थिर था। अशान्त। आखिर प्रज्ञानन्द बाबा का क्या होगा ? काजल क्या इसी तरह से लुकती-छिपती काले धंधे में संलग्न अपने धनी पति की जीवन-संगिनी या रखैल बनकर जीवन व्यतीत करती रहेगी ? सदा अशान्त, सदा उपेक्षित, सदा असहाय? और अनुराधा पढ़-लिखकर क्या करेगी ? जिस आदमी ने काजल को धन के लोभ में फँसाकर काला धंधा करने के लिए अपनी पत्नी बनाया, क्या जेल से छूटने के बाद अनुराधा पर भी अपनी वासना के डोरे नहीं डालेगा ? मैंने हमेशा माना है कि गन्दा धन्धा करने वालों की सोच कभी अच्छी नहीं होती। इन तीन जिन्दगियों यानी स्वामी प्रज्ञानन्द, काजल और अनुराधा की जिन्दगियों को मैं तीन तरीके से सुलझाने का प्रयत्न कर रहा था।

स्वामी प्रज्ञानन्द—अपने में शान्त, सुखी हैं। दशाश्वमेध घाट पर अपने भक्तों के बीच उपदेश देते हुए सदा सुखी और शान्त। जो कुछ थोड़ी-सी अशान्ति अतीत को लेकर उनके मन-मस्तिष्क पर है, वह काजल की असहाय दुश्चिन्ता के सामने कुछ भी नहीं। उसके भोगे हुए जीवन के समक्ष उनका सारा ज्ञान व्यर्थ है।

काजल की सबसे बड़ी चिन्ता अनुराधा है। जैसा कि मुझे स्टेशन पर छोड़ने आई थी तो पता चला कि वह शीघ्र ही अनुराधा की शादी कर देना चाहती है।"

मैंने काजल से पूछा था —"तुम्हारे पतिदेव को जेल से छूटने में अभी चार वर्ष लगेंगे। उन्हें वापस आ जाने दो तब···।"

पर वह बीच में ही बोल उठी—"अनू इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा दे देगी। इसके बाद शादी कर देना चाहती हूँ। सयानी हो चुकी है।"

"इतनी जल्दी भी क्या है ?"

"आप नहीं जानते। यह समाज बड़ा निष्ठुर है। उसे जब पता चलेगा कि अनुराधा काल गर्ल की बहन है, स्मगलर परिवार से सम्बन्ध रखती है तो क्या कोई भी अच्छा लड़का उसका हाथ थामेगा ? उस समय अनू का सारा जीवन मुझसे भी बदतर स्थितियों से गुजरेगा। मैंने तो भयंकर गरीबी देखी है, संघर्षों के बीच इस स्थिति में पहुँची हूँ पर अनू गरीबी के दुश्ताप का एक हल्का झोंका भी बर्दाश्त नहीं कर सकेगी। मैं नहीं चाहती कि मेरी बहन मेरे रास्ते पर चले।" कहते-कहते काजल की आँखें आँसुओं के प्रबल आवेग से भर गईं। मैंने उसे सांत्वना देने की नीयत से कहा—"चिन्ता मत करो काजल, मैं कलकत्ते में कोई अच्छा-सा लड़का खोजूँगा।"

काजल आश्वस्त होते हुए बोली—"आपसे एक बात कहना चाहती हूँ। क्या आप मेरी इस छोटी-सी प्रार्थना को सुन सकेंगे ?"

मैं उसकी ओर ध्यान से देखने लगा। उसने आँखें जमीन पर टिकाते हुए ही कहा—"अनु आपको कैसी लगती है ?"

"बहुत अच्छी। होशियार। स्मार्ट। सुन्दर।"

"मैं चाहती हूँ कि अनू का हाथ आपके हाथों में सौंप दूँ। इससे मेरे मन को शान्ति मिलेगी। मैंने आपको सही मन से चाहा है, परन्तु भाग्य ने मुझे एक ऐसी चट्टान पर पटक दिया, जहाँ से पीछे मुड़कर देखते हुए डर-सा लगता है। इसीलिए आपसे डरते हुए मैं यह प्रस्ताव···।"

मुझे एक झटका-सा लगा था। 'गोमो' स्टेशन पहुँचने से पहले ही ट्रेन अचानक रुक गई थी। बचाओ-बचाओ की आवाजें क्रमागत मेरे कानों में पड़ रही थीं। मैं जिस डिब्बे में था, लोग भयभीत होकर अपना सामान सहेजने लगे। कई युवक डिब्बे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर पहरा देते हुए खड़े हो गए। ट्रेन के अगले डिब्बे के मुसाफिरों को डाकू लूट रहे थे। शायद इस डिब्बे में भी आएँगे। औरतें अपने जेवर कान, गले, हाथों से उतार कर सुरक्षित या गोपन स्थलों पर छिपाने लगीं। डिब्बे में सभी के चेहरे पर चिन्ता, आशंका और भय की रेखाएँ खिंच गईं। लगभग आधे घण्टे के बाद ट्रेन धीरे-धीरे रेंगने लगी और तेज गति से चलने लगी, तब कहीं

डिब्बे में बैठे लोगों की जान में जान आई। मैं निर्विकार भाव से बैठा लोगों के भयभीत चेहरों पर फिर से आश्वस्ति की आनन्द-किरण फैलते देख रहा था। दिमाग में काजल का प्रस्ताव टँगा था। हालाँकि उसका प्रस्ताव सुनकर उसी वक्त मैंने उससे कह दिया था—"अनुराधा अभी जिस वातावरण में पली है यानी सुख, समृद्धि से भरे जीवन के बीच—क्या वह मुझ जैसे पत्रकार के साथ सुखी रह पाएगी। मुझ जैसे मध्यवित्त साधारण व्यक्ति के साथ, जिसकी आमदनी ही कुल आठ सौ रुपए है, फूल जैसी लड़की मेरे साथ काँटो भरा अभावग्रस्त जीवन भला क्यों बिताएगी ? नहीं-नहीं। उसकी शादी तुम किसी रईस खानदान में कर दो।"

काजल मेरी बात सुनकर बिखर गई। हाथ जोड़ लिए—"आप अनू को गलत समझ रहे हैं। मैंने उससे आज ही पूछा है। बहुत समझदार है। मैं उसे सुखी देखना चाहती हूँ अमित बाबू ! आप मना नहीं कर सकते। मैं आपका आदर करती हूँ।"

"देखो काजल, तुम बहुत भावुक हो। तुम्हारे जीवन में इतना कुछ घटित हो गया फिर भी तुम संवेदना की सीढ़ियों पर बैठी भविष्य की राह देखती रही हो। यह समाज, यह संसार बड़ा निष्ठुर है। अच्छे-भलों के लिए निष्ठुर, बुरों के लिए भला।"

"हर बंगाली लड़की संवेदनशील होती है। यही उसकी कोमलता है, स्वभाव है। मैं उससे अलग नहीं हूँ। फिर संसार की निष्ठुरता औरत ही झेल सकती है। आप तो पत्रकार हैं। आदर्श जीवन, सच्चाई के प्रति प्रतिबद्ध।"

"मेरे बारे में तुम अच्छी तरह जानती हो। अभावों में जीते हुए मैं भला एक सुन्दर लड़की को उन अभावों के साथ कैसे बाँध लूँ ?"

ट्रेन का समय हो चुका था। हमारी बातचीत बीच में ही टूट गई। काजल ट्रेन के चलने के साथ आगे बढ़ते हुए विदा का हाथ हिलाती रही। उसकी रुआँसी सजल आँखें मेरा पीछा रास्ते-भर करती रहीं। कलकत्ता पहुँच कर नगर की जानलेवा दिनचर्याओं के बीच मैं भूल गया कि काजल ने मुझसे जिस प्रस्ताव के बारे में स्वीकृति चाही थी उस पर उसे स्वीकृति देनी होगी। ठीक से सोच नहीं पा रहा था। सोचने का

अवसर ही नहीं मिला। इस तरह एक माह बीत गया। एक शाम दफ्तर से लौटने पर एक पत्र मिला। पत्र अनुराधा ने लिखा था बनारस से। मैं उत्सुकतावश पढ़ने लगा—

"प्रिय अमित दा!

सादर नमस्कार।

आप कलकत्ता जाकर हम लोगों को भूल गए। दीदी आपके बारे में मुझे हमेशा अच्छी बातें बताती रहती हैं। कल मुझे यूनिवर्सिटी पहुँचाकर दीदी घर लौट रही थीं, अचानक ही कार का एक्सीडेण्ट हो गया। सामने से आते हुए एक ट्रक ने धक्का मारा। वे मालवीय अस्पताल में थीं। हालत सीरियस थी सो आज 'बेली नर्सिंग होम' में भर्ती कराया है। घबड़ाने की बात नहीं है। माथे में और दाएँ पाँव में बहुत चोट आई है। आप तो जानते हैं—दीदी के अलावा मेरा इस दुनिया में कोई नहीं। दीदी ने आपको संदेश देने के लिए कहा। वे आपको याद कर रही हैं। उन्होंने मुझे आपका पता बताया। आप आएँगे न?

आशा करती हूँ आप कलकत्ते में बहुत व्यस्त होते हुए भी जरूर आएँगे।

प्रणाम सहित, आपकी
अनुराधा।"

तो मुझे तत्काल बनारस चला जाना चाहिए। परन्तु आफिस से तत्काल छुट्टी नहीं मिल सकी। एक दिन, दो दिन बीत जाने के बाद पता नहीं क्यों मन आत्मग्लानि से भर गया था। लग रहा था जैसे मैं किसी के विश्वास को अपमानित कर रहा हूँ। जैसे काजल कह रही हो, मैंने आपको माना, आप पर आस्था की, पर आपने मुझे झुठला दिया। उस दिन रविवार था। छुट्टी का दिन। मैंने निश्चय किया और सफरी बैग में पायजामा-कुर्त्ता डालकर बनारस जाने के लिए तैयार हो गया। ट्रेन में ही टिकट लिया। खूब भीड़ थी। बैठकर ही सारा रास्ता तय किया। काजल के घर पहुँचा तो दिन के दस बजे थे। मुझे देखकर अनुराधा खुश हो गई—"अरे आप! तार दे दिया होता मैं स्टेशन पर लेने आ जाती।"

"कोई बात नहीं। तुम्हें स्टेशन बुलाकर मैं परेशान नहीं करना

चाहता था। सोचा, सरप्राइज दूंगा। तुम्हारी दीदी अब कैसी हैं ?''

''पहले से कुछ ठीक हैं। माथे का घाव ठीक हो रहा है पर पाँव में काफी चोट लगी है। आप बैठिए, मैं अभी आई।'' कहकर अनुराधा अन्दर गई। मेरे लिए एक हाथ में मिठाइयों से भरी प्लेट तथा दूसरे हाथ में पानी से भरा गिलास लिए हुए आई। टेबुल पर रखते हुए बोली—

''आप नाश्ते में क्या लेंगे ? आमलेट चलेगा ?''

''तुम जो खिला दो चलेगा।'' मैंने एक बरफी खाकर गिलास भर पानी एक साँस में पी गया। बहुत प्यासा था।''

उसने कहा—''चलिए ऊपर कमरे में। काफी थक गए हैं। चार बजे दीदी से मिलने चलेंगे। तब तक खा-पीकर आराम कीजिए।

मैं अनुराधा के पीछे-पीछे ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। उस दिन मैंने ध्यान से देखा था उसे। खूब सुडौल शरीर, चाल में फुर्ती, चलती है तो उसके चप्पल आवाजें करते हैं जैसे अपने चप्पलों से वह जमीन की हर चीज को धक्का दे रही है। रौंद रही है। स्वाभिमान से मुस्करा रही है। मैंने उससे पूछा—''तुम्हारे क्लास आज नहीं हैं क्या ?''

''ना। आज बी०एच०यू० छात्रसंघ ने हड़ताल कर दी है। यूनिवर्सिटी बन्द है। परसों उपकुलपति का घेराव किया था। पुलिस ने आकर बीच-बचाव किया। पुलिस को यूनिवर्सिटी परिसर में नहीं आने देने की माँग को लेकर छात्र हड़ताल कर रहे हैं।''

कमरे में पहुँचकर उसने पर्दे खोल दिए। मैंने देखा, कमरे की हर चीज करीने से सजाई गई थी। सोफे, पलंग, पलंग से सटी टेबुल, टेबुल पर लाल शेड वाला टेबुल लैम्प, लाल कार्पेट, गुलाबी रंग के पर्दे, दीवाल पर राजस्थानी चित्रकला के नमूने। 'रासलीला' तथा 'माखनचोर' के दो बड़े तैलचित्र लगे थे। कुछ देर तक मैं कमरे का परीक्षण करता खड़ा रहा। मुझे उस स्थिति में देखकर अनुराधा ने पूछा—''क्या हुआ ? आप इस तरह से क्या देख रहे हैं ?''

''देख रहा था, काजल ने यह सब सजाया होगा।''

''हाँ। फर्नीचर, पर्दे, पेन्टिंग्ज, सभी दीदी की पसन्द से खरीदे गए हैं। हम लोग साल-भर पहले जब कलकत्ता से यहाँ आए तो यह कोठी

बिल्कुल उजाड़ खंडहर लग रही थी। दीदी के कहने से इसकी नये सिरे से रँगाई हुई। लान, बगीचा, फूलों की क्यारियाँ, पेड़-पौधे सब नीदी ने अपनी देखरेख में सजाया-सँवारा। अब जो भी यहाँ आता है, इस कोठी का रंग, रूप, सजावट देखकर चकित हो उठता है। जिन सज्जन से जीजा जी ने यह कोठी खरीदी थी अब वे इसे फिर से खरीदना चाहते हैं। पर दीदी ने कह दिया कि वे कभी भी इस कोठी को बेचेंगी नहीं। इस जगह से दीदी को वहुत प्यार है।''

''अच्छा आप तैयार हो जाइए। मैं नाश्ते के लिए इन्तजाम कर रही हूँ। नीचे आ जाइएगा। डाईनिग हाल में। अच्छा बताइए तो क्या खायेंगे।'' मैंने कहा—''कुछ भी।'' वह हँस पडी—''पत्रकार से भगवान बचाए।''

अनुराधा मुझे हिदायत देकर चली गई। मैं सोफे पर बैठकर सोचने लगा था, सब कुछ कितनी तेजी से बदल जाता है। दिमाग पर विना किसी प्रकार का जोर दिए हुए मैंने मान लिया, जो कुछ जैसे चलता है उसे स्वीकार करना ही समय के साथ चलना है। मैं उठकर नहाने चला गया। नहाते समय मन में आया—इस वक्त दशाश्वमेध घाट पर नहाता तो अच्छा लगता। प्रज्ञानन्द बावा से भी दूसरी बार मुलाकात हो जाती। मैंने निश्चय किया कि मुझे काजल से उसके पिता के वारे में बता देना चाहिए था।

'वेली नर्सिंग होम' केबिन नं 4 में काजल मुझे देखकर औपचारिकता-वश विस्तर से उठने लगी। पर उससे उठा नहीं गया। दर्द से कराह उठी। उसकी असहनीय व्यथा से दुखी होते हुए मैंने पूछा—''अब कैसी तबियत है?''

मुझे देखकर प्रसन्नता की रेखाएँ उसके चेहरे पर खिंच उठीं। कहा—"देख ही रहे हैं।" मैं स्टूल खींचकर उसके सिरहाने बैठ गया। अनुराधा ने अपने साथ लाए हुए फलों को टेबुल पर रख दिया। गुलदस्ते को काजल के सिरहाने रखे फ्लावर पाट में सजा दिया।

मैंने कहा—"आखिर यह हुआ कैसे? शायद बहुत तेज कार चला रही थीं?"

"हाँ, कुछ ज्यादा तेज हो गई थी। सामने से दो लड़के स्कूल जा रहे थे। उन्हें बचाने के लिए मैंने कार दाएँ मोड़ी। परन्तु सामने से आते ट्रक ने साइड नहीं दी। यहाँ के गँवार ट्रक ड्राइवर नशे में बुत्त गाड़ी चलाते हैं, मुझे खुशी है कि बच्चों को बचा लिया। आप आ गए अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। जल्दी ही ठीक हो जाऊँगी। आपको आने में तकलीफ हुई होगी। कैसे पता चला? जरूर अनुराधा ने लिखा होगा। क्यों री अनू?"

शरमा कर अनु ने दूसरी ओर मुँह मोड़ लिया। मैंने अनुराधा की ओर देखते हुए कहा—"हाँ इसी ने लिखा था।" झेंप मिटाने के लिए अनुराधा ने काजल से पूछा—"दीदी, डाक्टर क्या कहते हैं? कब तक यहाँ रहना होगा?"

"दो सप्ताह से अधिक लग जायेंगे। टाँगों का आपरेशन होगा।"

"इतने दिन? मैं भला अकेली इतनी बड़ी कोठी में कैसे रहूँगी?"

"अरे पगली! अमित बाबू कलकत्ता से आ गए हैं, फिर भी तू अपने को अकेली समझ रही है!"

मैंने उठते हुए काजल से कहा—"डाक्टर से रिपोर्ट लेकर अभी आता हूँ।" चलने लगा तो अनुराधा ने भी मेरे साथ चलने के लिए कहा।

मैंने मना किया—"तुम बैठो। दीदी से बातें करो।"

"ना अमित दा, मैं डाक्टर से पूछूँगी दीदी को और कितने दिन यहाँ रखेंगे। यह भी कोई जगह है! हुँह!"

मैं केबिन से बाहर निकलता कि एक नर्स के साथ डाक्टर स्वयं आता दीखा। मैंने उनसे पूछा—"डाक्टर, कोई खतरा तो नहीं?" डाक्टर ने मुझे ध्यानपूर्वक परखा, फिर धीरे से बोला—"जरा इधर आइए।" केबिन के बाहर मुझे लाकर बोला—"देखिए, इनके दोनों पाँवों का एम्पुटेशन

करना होगा। नहीं तो जहर सारे शरीर में फैल सकता है। इनका प्रैशर बहुत लो है। आप इनके पति हैं?"

"जी नहीं। दोस्त हूँ।"

"इनका सगा-सम्बन्धी कोई हो तो कागज पर हस्ताक्षर करने हैं। अस्पताल का नियम है।" अनुराधा हमसे कुछ ही दूरी पर खड़ी थी। हमारी बातचीत शायद वह सुन नहीं पाई। मैंने उसे हाथ के इशारे से पास बुलाते हुए डाक्टर से कहा—"ये अनुराधा है, काजल की बहन।" डाक्टर ने अनुराधा से कहा—

"आप मेरे साथ आइए।" अनुराधा डाक्टर के साथ आफिस की ओर चली गई। मैं जाकर काजल के पास बैठ गया। दिमाग में 'एम्पुटेशन' की बात कौंध रही थी। काजल के प्रति गहरी आत्मवेदना से मेरा दिल बोझिल हो उठा। सोचा, क्या इस बारे में काजल जानती होगी? यदि नहीं जानती तो उसकी पूर्व-अनुमति लेना आवश्यक है। वह 'एम्पुटेशन' की बात सुनकर दुःखी तो होगी पर कोई उपाय नहीं। भला कैसे कोई चाहेगा कि उसके पाँव काट दिये जाएँ और वह आजीवन अपाहिज बनी रहे। मैंने काजल की ओर दयार्द्र दृष्टि से देखा। उसके माथे पर पट्टी बँधी थी। वह अब मेरी ओर ताक रही थी। मैंने उससे पूछा—"तुम्हारा पाँव काफी जखमी है। डाक्टर कह रहा था कि···" अचानक जैसे मुझे जोरों की ब्रेक लगी।

"क्या कह रहा था डाक्टर?" काजल उत्सुकतावश बोली।

"कुछ खास नहीं। कह रहा था ठीक होने में देर लगेगी।"

अनुराधा अब तक आ गई। मैंने देखा कि उसकी आँखों में आँसू हैं। समझ गया, डाक्टर ने उसे 'ऐम्पुटेशन' की बात बताई होगी। कागज पर हस्ताक्षर करते समय पढ़ लिया होगा। हम दोनों को मौन, गम्भीर देखकर काजल बोली—"क्यों रे अनू! डाक्टर से पूछा? कब यहाँ से जाना है?" अनु के आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। रोते हुए काजल के पाँवों के पास सिर रख दिया उसने। सिसकियों में डूबी आवाज निकली थी—"दीदी, यह सब क्या हो गया! दीदी! दीदी! डाक्टर कहता है आपका पाँव काटना पड़ेगा, नहीं तो विष सारे शरीर में फैल जाएगा।"

"तू पगली है रे ! सब ठीक हो जाएगा। धीरज रख। अमिताभ बाबू आ गए हैं। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। यही न कि मेरी टाँग काट दी जायेगी। यह तो और अच्छा है। बैठी-बैठी खाऊँगी। आराम से दिन गुजारूँगी। सभी से काम लूँगी। चिन्ता मत कर। इतने सारे संघर्षों के बाद अब मैं जीना सीख चुकी हूँ।"

अनुराधा लगातार रोए जा रही है। मैं उठकर उस तक गया। उसके सिर पर हाथ सहलाते हुए कहा—"अनू, उठो ! यह अस्पताल है। क्या पागलपन कर रही हो। हर स्थिति का सामना हिम्मत से करना सीखो। चलो अब चलते हैं। काजल को विश्राम करने दो।"

मैं अनुराधा के साथ काजल से विदा लेकर अस्पताल के बाहर आकर गाड़ी में बैठ गया तो ड्राइवर से कहा—"दशाश्वमेध घाट चलो।" ऐसा कहते हुए मैंने कलकत्ता से ट्रेन में आते हुए अपने निश्चय को दुहराया, बनारस पहुँचते ही स्वामी प्रज्ञानन्द से काजल को मिला देंगे। बाप-बेटी के मिलन को मैं अधिक महत्त्व दे रहा था, क्योंकि अच्छी तरह जानता था, काजल के मन पर पिता के अचानक गायब हो जाने का बोझ है और उससे भी अधिक आत्म यंत्रणा प्रज्ञानन्द स्वामी को है घर त्याग कर। भले ही ज्ञान और संन्यास ने उन्हें सांसारिकता से दूर कर दिया है। यह बात पहली बार उनसे मिलने पर मुझे स्पष्ट लगी थी। दशाश्वमेध घाट के पास कार आकर रुक गई तो अनुराधा ने मुझसे पूछा—"यहाँ किसलिए आए हैं अमित दा ?"

मैंने कहा—"पहले नीचे उतरो, फिर बताता हूँ।"

अनुराधा साश्चर्य मेरे पीछे-पीछे दशाश्वमेध घाट की ओर चलने लगी। स्वामी प्रज्ञानंद अपने भक्तों के बीच श्रीमद्भागवत कथा पर प्रवचन दे रहे थे। मुझे और मेरे साथ एक युवती को देखकर प्रवचन बीच में ही रोक दिए। कहा—"आओ बेटा, बैठो !"

मैंने अनुराधा से कहा—"अनू, इन्हें प्रणाम करो। तुम्हारे पिता हैं। अनुराधा विस्मय से कभी मुझे और कभी स्वामी प्रज्ञानन्द को देख रही थी। उसके इस प्रकार असमंजस में पड़ने से मैं समझ गया, अनुराधा संभवतः मेरी बातों को हास्यास्पद समझ रही है। मैंने पहले बोले गए

स्वर से कुछ और जोर देकर कहा—"अनू ! अपने पिता को प्रणाम करो। देख क्या रही हो तुम्हारे पिता हैं, श्रीसुधांशु चटर्जी !" अनुराधा स्वामी प्रज्ञानन्द के पाँव छूते हुए बोली—"पिताजी, आप बनारस में ही हैं। क्यों हमें भूल गए।" वह रो उठी। रुंधे हुए स्वर में कहा था—"हमने क्या गलती की कि इतनी बड़ी सजा आपने दी ? आप घर से अचानक हमें छोड़कर चले गए ?" वह सुबकने लगी।

स्वामी प्रज्ञानन्द के नेत्रों से अश्रुधारा बहकर गिरने लगी। भक्तजन आश्चर्यचकित। यह कैसा अचानक पिता-पुत्री मिलन। उन्होंने भक्तों से कहा—"आज आप लोग जाएँ। कल इसी समय फिर कथा का आरम्भ करेंगे।"

भक्त उनके पाँव छूकर आशीर्वाद लेकर प्रस्थान करने लगे। रह गए स्वामी प्रज्ञानन्द, अनुराधा और मैं। उन्होंने अनुराधा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी ! यह मायावी संसार विचित्र है। कभी सोचा नहीं था तुम लोगों से इस जीवन में कभी दोबारा मुलाकात होगी। पर काशी विश्वनाथ बाबा ने आज दस वर्ष बाद यहाँ तुमसे मिला दिया।"

मैंने उनसे कहा—"चटर्जी बाबू, काजल अस्पताल में है। खतरनाक एक्सीडेण्ट हुआ है। गम्भीर अवस्था में है। आप उसे देखने नहीं जायेंगे ?"

स्वामी प्रज्ञानन्द का चेहरा पीला पड़ गया था। क्षोभ, दुःख, आत्म-ग्लानि का कुहासा एक साथ उनके चेहरे पर छा गया। स्फुट स्वर में बोले—

"क्यों री अनु ! काजल भी तेरे साथ यहीं रहती है क्या ?"

"हाँ पिताजी ! दीदी यहीं रहती हैं। आप उन्हें देखने चलेंगे ना ? अमित दा ने आपसे हमें मिला दिया, नहीं तो एक ही स्थान पर रहते हुए भी हमारा मिलना नहीं हो पाता।"

स्वामी प्रज्ञानन्द ने आँखें बन्द कर लीं। उनकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ निकलकर सम्पूर्ण वेग से बहकर लम्बी सफेद दाढ़ी से होती हुई उनके गेरुए रँग के कुर्ते को भिगो रही थीं। शाम के पाँच बजे थे। घाट पर चहल-पहल बढ़ गई थी। एक अमरीकन हिप्पी गिरोह जिसमें दो लड़कियाँ और तीन लड़के पास ही बैठे गाँजा पी रहे थे, झूम-झूमकर 'हरे रामा, हरे कृष्णा' गा रहे थे। गंगा का जल शाम के डूबते हुए

सूरज के लाल रंग से लोहित हो उठा था। बीच में कई नावें और बजरे चल रहे थे। धीरे-धीरे हवा बह रही थी। दिसम्बर के दिन थे। मैंने ठण्डक का अनुभव किया। चलते समय चादर लेना भूल गया था। अनुराधा भी सिर्फ साड़ी पहनकर ही आई थी। मैंने उससे कहा—"तुम्हें ठण्ड लग रही होगी।" फिर क्षोभ, दुःख आत्मग्लानि के कुहासे में डूबते स्वामी प्रज्ञानन्द से कहा—"बाबा ! काजल आपको देखकर बहुत प्रसन्न होगी। उसकी हालत काफी गम्भीर है। ऐसे मौके पर आप क्या उसे आशीर्वाद नहीं देंगे कि शीघ्र स्वस्थ होकर अस्पताल से घर आ जाए?"

"किस अस्पताल में भर्ती है काजल?" स्वामी प्रज्ञानन्द ने आँखें मूँदे हुए ही मुझसे पूछा। उनके मुँह से काजल का नाम सुनकर मुझे अच्छा लगा।

"बेली नर्सिंग होम।" मेरे उत्तर देने से पहले ही अनुराधा बोल उठी।

"कैसे चलोगे यहाँ से? कोई वाहन बुला लो।" उन्होंने आँखें खोल कर कहा।

"अपनी कार है पिताजी।" अनुराधा ने आतुरतावश कहा। स्वामी प्रज्ञानन्द की आँखें फैली रह गईं। उन्होंने ध्यान से अनुराधा की ओर देखा। फिर मेरी ओर अपनी अनाश्वस्त दृष्टि फेरते हुए बोले—"बेटा अमित ! तुमने इन बच्चों से मुझे मिला दिया। भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे। चलो चलते हैं।" कहकर वे आसन से उठ खड़े हुए। आगे-आगे अनुराधा, पीछे स्वामी प्रज्ञानन्द और उनके पीछे मैं। कार तक पैदल गए। मैंने ही दरवाजा खोलकर उन्हें पीछे बैठाया। अनु भी उनकी बगल में बैठ गई। मैंने अगली सीट पर बैठते हुए ड्राइवर से कहा—"बेली नर्सिंग होम चलो।"

पुनर्जन्म में मेरा विश्वास नहीं, फिर भी जब कभी आदमी के जीवन की विषम परिस्थितियों में परिवर्तन होते देखा है तो पुनर्जन्म की बात इसी जीवन में साकार रूप से उजागर हो उठी है। कार चल पड़ी तो मैंने पीछे मुड़कर स्वामी प्रज्ञानन्द के चेहरे की ओर देखा। उनके मुँह पर आत्मिक शान्ति पहले से कहीं अधिक दिव्य रूप में व्याप्त थी। अनुराधा खिड़की से बाहर मुँह किए चुपचाप बैठी थी। मैंने बाबा से कहना चाहा, 'अब आप काजल के साथ ही रहिए' पर दूसरी ही बात मुँह से निकल गई—"बाबा, क्या आप दस साल से बनारस में ही हैं ?"

"नहीं !" स्वामी प्रज्ञानन्द का मौन टूटा। जैसे मेरी बात से चौंक गए हों—"कुछ दिन तक प्रयाग में रहा। संगम पर। हनुमान मन्दिर में। फिर वहाँ से दिल उचट गया तो मथुरा, वृन्दावन, ऋषिकेश, हरिद्वार, आदि घूमता रहा। पर कहीं भी अच्छा नहीं लगा। यहाँ काशी में आकर बाबा विश्वनाथ की बैकुण्ठपुरी में मेरा चित्त शान्त हो गया है। अब कहीं और जाने की इच्छा ही मन में नहीं आती।"

"पिताजी ! इतने दिनों में आपको हमारी याद नहीं आई ?" अनुराधा की बात सुनकर जैसे स्वामी प्रज्ञानन्द हतप्रभ हो उठे। उन्होंने कहा—"बेटी, जिस दिन घर छोड़ दिया था, उसी दिन मन को कठोर बना लिया कि कभी दोबारा घर-संसार की याद नहीं करूँगा। फिर भी मन बड़ा चंचल होता है। घोड़े की तरह भागता है। तुम्हारी और काजल की याद बराबर आती रही। दस वर्षों से मैं यही सोचता रहा कि सचमुच काजल के सामने मैं अपराधी हूँ। बहुत सताया है उसे। उसने परिवार के लिए अपने को बलिदान कर दिया और मैंने अपने अहम् के लिए पूरे परिवार को त्याग दिया।" स्वामी प्रज्ञानन्द का गला रुँध-सा गया। आगे कुछ बोल पाने में असमर्थ हो गए।

"पिताजी ! माँ अब इस दुनिया में नहीं हैं।" आँसुओं के बीच सुबकते हुए अनुराधा ने बताया—"माँ ने आपके गायब होने के दिन से ही खाना-पीना छोड़ दिया था। फिर बहुत बीमार हो गईं। डाक्टर की दवाइयाँ नही खाती थीं। डाक्टर बोलता था उन्हें कैंसर है। दीदी ने बहुत दवा की पर उनकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ और वे हमें छोड़कर

चल दीं।"

स्वामी प्रज्ञानन्द के चेहरे पर कठोर शान्ति छा गई। चेहरा तन गया। आँखें बन्द कर लीं। 'ओंकार-स्तुति' के स्वर बुदबुदाते रहे। मैंने देखा था उस दिन। घरबार, गृहस्थी-संसार छोड़े हुए संन्यासी के दिल में अपने अतीत के प्रति कितनी मोह-ममता होती है। सिर पर रखे अतीत की मिट्टी से बने इस मोह-ममता के कलश को वह अपने ज्ञान-ध्यान द्वारा भुलाने, झुठलाने की साधना भले ही कर ले और अस्वीकार की कोशिश में वह कलश भले ही उसके सिर पर से गिरकर चूर-चूर हो जाय, पर उसमें भरा हुआ मोह का जल छिटककर उसके ऊपर पड़े विना नहीं रह सकता। स्वामी प्रज्ञानन्द को सम्भवत: इसी बात से कष्ट हो रहा था कि स्त्री, वच्चों, घर-संसार को त्याग कर उन्होंने गलती की है। जिस काजल से अप्रसन्न होकर आक्रोश में उन्होंने घरबार छोड़ दिया था वही अपनी इज्जत तक बेचने पर मजबूर हो गई। उनके दिमाग में 'बेग-वागान' के संदीप चोपड़ा के अलबम में अन्य लड़कियों के चित्रों के वीच काजल का अर्द्धनग्न चित्र घूम गया। उन्होंने कहा—"काजल बेटी ने परिवार को चलाने के लिए बड़े-बड़े कष्ट झेले हैं। जो करना नहीं चाहिए, उसे भी उसने किया। अपनी चिन्ता उसने कभी नहीं की। रूखा-सूखा खाकर सवेरे घर से निकल जाती और रात में थककर लौटती। घर का सारा काम-काज भी करती। रसोई में अपनी माँ की सहायता करती। ऐसी लड़कियाँ बहुत कम पैदा होती हैं। पन्द्रह साल की उम्र से ही पढ़ाई छोड़कर घर सँभालने लगी थी। पर मैंने उस पर अकारण ही आक्रोश किया। वह मेरी भूल थी। सच बेटे, आदमी कभी-कभी लोक-लाज की खातिर अपना सब कुछ खो देता है। अपना ज्ञान, विवेक नष्ट कर डालता है। मैं बंगाली ब्राह्मण जाति का एक संस्कारी आदमी ठहरा। लोकलाज को अपमानित होते देखकर अचानक मन में सन्तान, पत्नी, घर-गृहस्थी के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गई। आह, यह कैसी विचित्र लीला है? मैं दस वर्षों से जीवन की सच्चाई को गंगा के प्रवाह, धर्मशास्त्रों और संन्यास के विविध आयामों के बीच खोजता रहा परन्तु आज लग रहा है मेरा सारा धर्म, ज्ञान, मेरी सारी प्रतिष्ठा, मेरे परिवार के साथ ही सुरक्षित

थी। मैंने इतने दिनों के अकेले निर्वासन के बाद इतना अवश्य सीखा है कि जीवन में शीघ्रतापूर्वक किया गया कार्य सबसे बड़ा आपद-धर्म होता है। उससे आदमी का बहुत बड़ा अनिष्ट होता है। मैं स्वयं उसका जीता-जागता उदाहरण हूँ।"

कार नर्सिंग होम के सामने आकर खड़ी हो गई। ड्राइवर ने उतरकर पीछे का दरवाजा खोला। स्वामी प्रज्ञानन्द उतरे तो आसपास आते-जाते लोगों की नजर उन पर टिक गई। अनुराधा ने मुझसे पूछा—"मिलने के लिए डाक्टर से आज्ञापत्र लेना पड़ेगा क्या ?" मैंने कहा—"नहीं। हम सीधे ऊपर चलते हैं। जरूरत होगी तो पास ले लेंगे। अभी तो सिर्फ छः ही बजे हैं। मिलने का समय छः बजे तक है।"

हम तीनों सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर पहले तल्ले पर स्थित केबिन नं० चार में जा पहुँचे। काजल चित लेटी निर्निमेष पलकों से छत की ओर देख रही थी। हमें एक संन्यासी के साथ आया देखकर साश्चर्य बोली—"अमित बाबू ! ये स्वामी जी···" कहते-कहते दर्द से कराह उठी। तत्काल जैसे पीड़ा पर नियंत्रण रखते हुए बोली—"डाक्टर शाम को साढ़े सात बजे आपरेशन करेगा। पाँवों में बहुत दर्द हो रहा है।" मैंने घड़ी देखी। उस वक्त शाम के ठीक छः बजे थे। स्वामी प्रज्ञानन्द की तरफ इशारा करते हुए बोला—"काजल, इन्हें पहचान रही हो ?"

काजल स्वामी प्रज्ञानन्द को ध्यानपूर्वक देखकर अचानक आर्तनाद कर उठी—"ओह ! पिताजी आप !" स्वामी प्रज्ञानन्द आगे बढ़कर काजल के सिर पर ममता भरा हाथ फेरते रहे। भावावेश में आँखों से अश्रुधारा बहकर उनके कपोलों को भिगोने लगी। दस वर्ष बाद काजल अपने खोए हुए पिता के दर्शन कर रही थी। उस पिता के जिसके बारे में उसने सोच लिया था कि सम्भवतः किसी दुर्घटना में मर गए या बुरे तत्त्वों ने मार डाला। कलकत्ते में रोज-बरोज ऐसे सैकड़ों लोग गायब होते रहते हैं, मार डाले जाते हैं या दूसरे कार्यों के लिए अपहृत कर लिए जाते हैं। बच्चों से लेकर बूढ़े तक। काजल ने आँसुओं के बीच अस्फुट स्वर में कहा था—"पिताजी, आप अचानक कहाँ चले गए थे ? हमसे ऐसी क्या गलती हो गई थी ?"

"नहीं बेटी, तुम लोगों की कोई गलती नहीं थी। सारा अपराध मेरा है। मैं ही दोषी हूँ। मैंने तुम सब पर अविश्वास किया।"

"हाँ पिताजी, मैं इस लायक ही हूँ। मैंने घर-परिवार के लिए जो भी गलत काम किए, उनकी सजा मिल गई। उस सबके लिए मैं प्रायश्चित्त करूँगी।" काजल की इस बात से मैं भावाभिभूत हो उठा। दुर्घटनाग्रस्त होकर अस्पताल में भर्ती होना, टाँगों का 'एम्पुटेशन', अपाहिज जीवन की दुःखद कल्पना प्रायश्चित्त ही तो है। मैंने कहा—"काजल, व्यर्थ की बातें मत करो। तुमने जो कुछ जीवन में किया है, मैं उसे आदरभाव से देखता हूँ। तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। तुमने अपने लिए नहीं बल्कि परिवार की खातिर इतने संघर्ष झेले। अपना सुख, सम्मान सब कुछ परिवार के लिए बलिदान कर दिया।"

"अमित बाबू! आप ऐसी बात सोच सकते हैं, पर जब मेरे पिता ही मुझे अपना नहीं सके तो मैं भला कौन-सी आस्था रखूँ इस जीवन के बारे में! सारी जिन्दगी असम्मानित लड़की से लेकर अपाहिज औरत की सीढ़ियाँ चढ़ना ही मेरी किस्मत में लिखा है।" स्वामी प्रज्ञानन्द का सारा शरीर दुःख और पश्चात्ताप से काँप रहा था। ममत्व-बोध से आत्म-विह्वल होकर उन्होंने कहा—"बेटी, क्या तू अपने अपराधी पिता को क्षमा नहीं कर देगी?" काजल बिखर गई। रोते हुए बोली—"आप ऐसा मत कहिए पिताजी! मत कहिए ऐसा। मैं कितनी बड़ी हतभागिनी हूँ कि मेरे पिता मुझसे क्षमादान चाहते हैं। नहीं पिताजी, आपने तो कोई पाप नहीं किया। आपने अपनी सोच के अनुसार ही जो उचित था किया। मैं तो आपकी सन्तान हूँ। आपने जो कुछ किया परिवार के मंगल के लिए ही। माँ हमेशा कहती थी—"आप देवता हैं। कभी किसी का अहित नहीं चाहते। किसी का अनिष्ट नहीं किया।"

"हाँ बेटी! मैंने आदमी के लिए 'सोच भला, कर भला' के सिद्धान्त पर चलने की कोशिश की, परन्तु मेरे आचरण के कारण मेरा परिवार इस तरह बिखर जायेगा, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। शायद विधाता को यही स्वीकार था। भगवान तुम्हारा मंगल करे। तुम सुखी रहो बेटी!"

काजल ने अनुराधा को अपने पास बुलाया। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर होठों से चूमा। मेरी ओर अश्रुपूरित नेत्रों से देखकर कहा—"अमित बाबू ! आपको मेरे लिए एक और काम करना होगा। आप मना मत कीजिएगा। आपकी स्वीकृति मिलने पर मुझे आपरेशन से कोई दुःख नहीं होगा। यदि मर भी गई और जिन्दा रहकर एक टाँग पर ही बाकी जीवन बिताने में भी कोई कष्ट नहीं होगा। बस मेरी इतनी-सी विनती है कि आप अनू को स्वीकार कर लें, मेरी बहुत दिनों की इच्छा है। दस साल पहले जब आप पहली बार मेरे घर आए थे अनू गुड़ियों का ब्याह रचा रही थी। आपको गुड़ियों के विवाह का निमंत्रण दिया था। याद है न ?"

मैंने कहा—"हाँ, याद है। मैंने ही कहा था उस वक्त—'दूल्हा कहाँ है ?' और यह बित्ता-भर की लड़की बोली थी—'दूल्हा सज रहा है।"

"हाँ ! उस सजते हुए दूल्हे की कल्पना मैंने उसी दिन कर ली थी। क्योंकि मैं अच्छी तरह जानती थी कि आप जैसे व्यक्ति के लायक मैं नहीं हो सकती। पर अनू को पढ़ा-लिखाकर इस योग्य बनाऊँगी कि आपके लायक बन सके।"

"नहीं काजल ! यह तुम्हारा भ्रम है। मैं तुम्हें हृदय से मानता आया हूँ। मेरे मन में तुम्हारे लिए आदरभाव है। अनू के साथ शादी के बारे में कभी सोचा तक नहीं।"

"हाँ मैं जानती हूँ। इसीलिए आपको मेरा छोटा-सा अनुरोध मानना पड़ेगा. मेरी अन्तिम इच्छा समझकर। पिताजी, आप मेरी इस इच्छा को अवश्य स्वीकृति देंगे। अमित बाबू से हाँ करा लें।" वह दर्द से फिर कराह उठी। कुछ क्षणों के लिए केबिन में मौन का कुहासा घिर आया।

मेरा हृदय काजल के प्रति एक साथ दुःख और आदरभाव से भर गया मन-ही-मन सोचा—यह लड़की अन्दर से कितनी महान है। अनुराधा सिर नीचा किए अब तक सलज्ज खड़ी थी। स्वामी प्रज्ञानन्द आगे बढ़कर मेरा हाथ थामते हुए बोले—"बेटा, तुम्हें हम सबकी इच्छा का पालन करना होगा। ना मत करना।" मैं निश्चय और अनिश्चय के चौराहे पर अधिक देर तक खड़ा रहना नहीं चाहता था। शायद स्थितियों के बीच

यही होना तय था। जो बात दिल-दिमाग पर जड़ बनकर चिपकी थी यानी मेरी आर्थिक कमजोरी, जिसके बारे में काजल अच्छी तरह जानती है, फिर भी मैंने स्पष्ट कर देना अधिक बेहतर समझा। मैं कुछ बोलता कि इसके पहले ही स्वामी प्रज्ञानन्द ने मेरे कन्धे पर ममत्व, आत्मीयता से भरा हाथ रख दिया—"बेटा, इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लो। ईश्वर करे तुम्हारा जीवन मंगलमय हो। तुम्हारे साथ अनुराधा सुखी, सौभाग्य-शाली रहेगी। काजल की बात रख लो। अमित बेटा! इस बात को भी अच्छी तरह सोच लेना होगा कि तुम अनुराधा का हाथ किसी असमंजस में पड़कर नहीं बल्कि यह समझकर थाम रहे हो कि शायद नियति को यही स्वीकार है।"

"मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है।" मैं उनकी बात पूरी होने के पहले ही बोल उठा।

"तो मेरे करीब आइये! जरा और आगे।" काजल ने आत्मविभोर होते हुए मुझसे कहा। मैं उसके पास तक चला गया तो उसने मेरा हाथ पकड़कर अपने मस्तक, अपनी आँखों से स्पर्श कर चूम लिया। अनुराधा को बुलाकर उसका हाथ मेरे हाथ में थमाते हुए आनन्दातिरेक में उसकी आँखों से जलधाराएँ फूट पड़ीं।

यह कलकत्ता विचित्र शहर है। एक ओर जहाँ प्रतिदिन दो सौ नाटक, साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक अनुष्ठान होते रहते हैं, वहीं जिधर देखो बार, होटल, रेस्त्राँ, रेस्त्राँ के अन्दर छोटी-छोटी केबिनें, पार्क स्ट्रीट में गज-गज-भर के फासले पर 'बार', होटल। शहर के सभी 'बार' में शाम को इतनी भीड़ कि कहीं सीट खाली नहीं मिलती। मुझे याद

आया आज के अखबार में यह समाचार छपा है—एक मंत्री महोदय बम्बई के पाँचसितारा होटल में दारू-पान के बीच किसी विदेशी मेहमान से प्रसन्नतापूर्वक बोले —"आजादी के बाद दिल्ली में दारू की बिक्री बीस गुना अधिक बढ़ गई है। दिल्ली के लोग इतने धनी हैं कि नब्बे लाख रुपये की प्रतिदिन दारू पी जाते हैं। पर कलकत्ता, बम्बई, मद्रास जैसे बड़े शहरों में उससे भी कहीं अधिक दारू की खपत है। लगता है आजादी के बाद जिस तरह दारू और वोटों का क्रय-विक्रय बढ़ गया है, उसी अनुपात में आदमी की आदमियत निम्न से निम्नतर होती जा रही है। इस शहर की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में बेशुमार दराज हैं। आदमी इन दराजों में बन्द महानगरीय कुण्ठा और यंत्रणा को भोगता रहता है और शहर वैसाखियों पर खड़ा दैत्य दानव की तरह असंख्य संघर्षरत मनुष्यों की आत्मसत्ता को खाता-चबाता चला जाता है। यह सच है कि कलकत्ता मध्ययुगीन सभ्यता का अग्रणी नेता रहा है और यह भी है कि यह शहर आधुनिक सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र भी है। पर जब-जब मैं रात के झिलमिल आलोक में कलकत्ता की सड़कों पर असंख्य कारों, टैक्सियों, मोटरों, ट्रामों को बेतहाशा भागते देखता हूँ, होटलों, बार, सिनेमाघरों, रेस्ट्राँ में आदमियों की भीड़-जमघट देखता हूँ, तब-तब अनुभव होता है कि कलकत्ता जहाँ एक ओर ऐश्वर्य और विलास का अय्याश नगर है, वहीं दूसरी ओर झुकी पीठ, पिचके गाल, दुर्बल कन्धों फटेहाल, बेकारी और क्षुधार्थ आवाजों की लहरों के थपेड़े खाता, निर्धनता के महासमुद्र तट पर मनुष्य अस्तित्व के रेत-घर बनाता रहा। प्रचण्ड गर्मी से सड़क पर पिघले कोलतार पर रेस के घोड़ों की तरह भागते रिक्शे वाले, अट्टालिकाएँ और भूगर्भ-रेल बनाते मजदूर, अपना गाँव, घर, खेत, अपनी गृहस्थी छोड़कर इस महानगर की भूख और घुटन के बीच फुटपाथ का जीवन जीते रहे, गरीबी से लड़ते रहे और शाम, थककर सो जाने के बाद 'ग्राम्य-गीतों' के स्वरों को सुनने के लिए फुटपाथ पर जमघट लग जाता है। भोजपुरी, अवधी, बिहारी, मैथिली मजदूरों के समवेत गीतों के साथ ढोल, मंजीरे, करताल की आवाजें रात की निस्तब्धता पर छा जाती हैं। यह कलकत्ता बड़ा सहज, बड़ा क्रूर, नृशंस और आत्मीय शहर है। ब्राबर्न रोड, डलहौजी

के फुटपाथों पर एक रुपया में दोपहर का खाना खाकर बीस लाख अस्सी हज़ार किरानी दिन-भर दफ्तरों में काम करते हैं। एक गाँव था कभी कोलिकाता नाम का, वही धीरे-धीरे अँग्रेजों की 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' का व्यापार-नगर बना और फिर भारत की राजधानी व विराट नगर। 'गोरूर-माठ' (चरागाह) से 'ब्रिगेड परेड' मैदान, 'धर्मतल्ला' मैदान का रूप धारण कर लिया, जहाँ अनेकों विप्लवों, विचारधाराओं और राजनैतिक संदेशों की आवाजें दिन-ब-दिन गूँजती रहती हैं। नया दिशा-संकेत देता हुआ यह नगर अनेकों विसंगतियों के होते हुए भी आत्मीय-सा लगता है। अपना लगता है। यही अपनत्व की पहचान ही आज अमिताभ को मेरे सामने खींचकर लायी है। आत्मीयतावश ही वह इस शहर से जुड़ी ऐसी कथा सुना रहा है जो उसके जीवन से जुड़ी हुई है। काजल, स्वामी प्रज्ञानन्द, अनुराधा के बारे में कहते-कहते अचानक वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर उदासी घिर गई। इस नये वर्ष की संध्या पर 'बार' में सभी के चेहरे पर आनन्द-उल्लास की लहर दौड़ रही है। दारू के नशे में या बिना दारू पिए लोग खुश हैं। मैंने घड़ी देखी। रात के साढ़े ग्यारह बज रहे थे, अभी आध घण्टा और बाकी है, नया वर्ष आने में। सिर्फ आध घण्टा, और बार के फ्लोर पर 'कैबरे' शुरू हो जायेगा। बत्तियाँ एक क्षण के लिए बुझ जायेंगी। फिर जब जलेंगी तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठेगा। एक-दूसरे को गले लगाते हुए 'हैपी न्यू इयर्स' के स्वरों से भर जाएगा होटल और पार्क स्ट्रीट का वातावरण। मैंने देखा कि अमिताभ का गिलास खाली हो चुका है। उससे पूछा—

"और लो! मेरी ओर से, एक।"

"आँ। हाँ। लूँगा। ओफ, सिर भारी हो गया।"—उसने हाथ बढ़ाकर सिगरेट का पैकेट ले लिया। पर वह खाली था। उसने दो उँगलियों से उसे एक ओर धक्का मारा। पैकेट मेज से दूर जाकर गिर पड़ा। फिर अस्फुट कंठ से बोला—"सब कुछ खाली। सब कुछ बिकाऊ। एक दिन इसी खाली सिगरेट के पैकेट की तरह यह जिन्दगी भी खाली हो जाएगी। हाँ-हाँ बन्धु, यह जिन्दगी भी। मैंने जिस तरह खाली पैकेट को धक्का लगाया है न, ठीक इसी तरह लोग मुझे धक्का देकर नदी में बहा देंगे। लकड़ियाँ तो शायद

मिलेंगी नहीं। जंगलों का अभाव होता जा रहा है। राशन की तरह एक दिन लकड़ी भी आवश्यक वस्तु घोषित कर दी जायगी।'' मरने के पहले दाह-संस्कार का इन्तजाम करना पड़ेगा। ओफ, कैसा समय आ गया!''

मैंने बैरे को बुलाया। आर्डर देता कि इसके पहले ही वह बोल उठा—

''देखो भाई, क्या नाम बताया था तुमने! डाममंड पीते-पीते दिमाग ही लुट गया। काशी जाकर पवित्र हो गया। अब तुम कुछ दूसरा लाओ। 'बोदका' मिलेगी। हाँ वही लाओ। नो सोडा। पानी। कलकत्ता का पानी भी तो 'गंगाजल' ही है।''

मैंने पूछा—''दारू में गंगाजल डालकर पीने की मानसिकता से तुम खुश हो रहे हो?''

''क्यों? क्या हर्ज है?''

''कुछ नहीं। ऐसा करना हिन्दू शास्त्र के अनुसार अधर्म है।''

''देखो मियाँ! अधर्म-वधर्म कहीं कुछ नहीं। जो अच्छा है, सुन्दर है, सच है, वही धर्म है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्। और जो वीभत्स है, कुत्सित है, असामाजिक है, वह अधर्म है। परन्तु अब धर्म, अधर्म पर से विश्वास उठ गया है। जीवन के अस्तित्व में जो थोड़ा-सा विश्वास बचा है वह इसीलिए कि अभी मुझे कम-से-कम दस एक साल तक और जीना है। क्यों जीना है? यह प्रश्न पूछने पर मैं कहूँगा—निरर्थक। विनार्थ···''

''सिर्फ दस एक साल?''

''हाँ, बस, और अधिक नहीं। अणुबमों के सामने दुनिया की उम्र कम हो गई है।''

वेटर 'बोदका' का पैग तथा एक बोतल पानी लाकर मेज पर रख गया।

मैंने पूछा—''कुछ खाओगे?''

''ना। कोई इच्छा ही नहीं हो रही है। हालाँकि तुम देख रहे हो आस-पास बैठे लोगों को। इस तरह खा रहे हैं जैसे इन्हें कभी खाना ही नहीं नसीब हुआ।''

''नये साल के दिन लोग अधिक अच्छा खाते हैं, भोज करते हैं कि वे

साल भर तक ऐसा ही करते रहें। पर तुम तो दुःख से आत्मतृप्ति पा रहे हो। खाने की क्या जरूरत।''

''बहुत अच्छे। अच्छी बातें कीं। दुःख तृप्ति बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, दुःख से आत्मतृप्ति। परन्तु कहीं तुम हताशा की बात तो नहीं कर रहे हो। मैं हताशा में विश्वास नहीं करता। उसे संक्रामक रोग मानता हूँ। हताशा मनुष्य की सबसे बड़ी ट्रेजडी है। यह दुःख की आत्मतृप्ति वाली बात भी हताशा ही है। आदमी की पराजय। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी।''

''परन्तु उस पर हमारा कोई वश नहीं। जहाँ स्थितियों के ऊपर विजय प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है, वहीं संघर्ष करते हुए हारना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।''

वह चुप रहा। अपना गिलास उठाकर 'सिप' किया। फिर उसकी नजर अम्लान चटर्जी पर जा टिकी। मैं भी उधर देखने लगा। कुछ और भी आँखें उधर ही टिकी थीं। अम्लान चटर्जी सीट पर खड़े होकर शरीर को मटका कर नाच रहे थे। उनके सामने बैठी महिला तथा दो और साथी ताली बजाकर ताल दे रहे थे। अमिताभ ने कहा—''ये लोग आकण्ठ डूब गये हैं। अब उन्हें घर चला जाना चाहिए। यह 'पब्लिक बार' है। इनका ड्राइंग रूम नहीं। यह आदमी है ही अक्ल का खोटा। बेहद नाटकीय और बेमानी। इसे मैं पसन्द नहीं करता। इसके कई नाटक मैंने देखे हैं। 'ब्रेख्त' की नकल करता है। हालाँकि नकल सभी करते हैं, तुम भी करते होगे।'' उसने मुझ पर अचानक ही आक्रमण किया। मैंने आक्रोश में उत्तर दिया—

''हाँ, नकल करता हूँ। अपनी संस्कृति, अपनी भारतीयता की नकल करता हूँ। आदमी का स्वभाव ही नकलची होता है।''

''देखो, नाराज मत हो। मैं भी मानता हूँ कि हर आदमी नकल करता है। नकल करके ही बच्चे से बड़ा होता है। खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा-संस्कृति, लेखन-चिन्तन सबमें भारत का आदमी दुनिया के और लोगों से नकल करने में दो गज आगे है।''

''नहीं, मैं नहीं मानता। तुम्हें भारतीयता की शायद पहचान नहीं है। दूसरों ने हमारी नकल की है। शिक्षा, संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान में।...''

उसने मेरी ओर झुककर मेरे चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए कहा—"उन्होंने हमारी नकल की पर आज हम उस नकल की नकल करने में अपने को महान मान रहे हैं। अच्छा एक बात बताओ। आज मैं और तुम इस 'बार' में बैठकर साथ-साथ दारू पी रहे हैं। नये साल का सान्ध्य-पर्व मना रहे हैं। क्या यह नकल नहीं ? पाश्चात्य देशों में यह सब होता रहा है। हमारे यहाँ रामनवमी, शिवरात्रि या प्रथम बैसाख (बंगाल का नया वर्ष) आदि उत्सव मनाए जाते हैं। भूखे रहकर व्रत करने, तुलसी पत्र खाकर फलाहार करने की परम्परा रही है न कि 'बार' में बैठकर दारू पीकर 'चियर्स' करने, हुड़दंग करने, 'कैबरे'(नंगा नाच) देखने और 'हैंडशेक' कर, एक-दूसरे के गले मिलकर, 'नया साल मुबारक हो' कहने की। दूसरों की संस्कृति का भूत हमारे सिर पर नाच रहा है। यह अपसंस्कृति, भारतीयता को न जाने किस दिशा की ओर ले जायगी और देश को खण्ड-खण्ड कर देगी। यह दारू और दारा का युग है। और यही संस्कृति सारी दुनिया को अपने चंगुल में फाँसे हुए है। इससे बाहर जाने का कोई रास्ता नहीं। क्योंकि आदमी की आदिम इच्छा यही रही है—अच्छा खाना, अच्छा पीना, आराम, ऐश्वर्य, अच्छा घर और सुन्दर औरत।"

"तुम भी तो इसी संस्कृति के एक अंग हो। गलत स्थितियों के प्रति आक्रोश तभी अच्छा और अर्थपूर्ण लगता है जबकि उस विशेष स्थिति के प्रति आवेश जाहिर करने वाला ईमानदार हो। जिस जमीन पर हम खड़े हैं, उसीको धिक्कारना कोई सार्थक सत्य नहीं।"

"ना भी हो, तब भी मुझे इस सारे माहौल से सख्त नफरत है। मैं अपने जीवन में कुछ अच्छा करने या अच्छा पाने की कोशिश में बस इसी उपलब्धि तक पहुँचा हूँ कि एक अखबार में प्रूफरीडर से पत्रकार बन गया और फिर इस तरह के जीवन के साथ मेरा साक्षात्कार हुआ कि लगता है बार-बार मात खाए पाण्डवों की तरह मैं भी बाजी पर बाजी लगाता रहा और हारता रहा। हर वक्त मेरे दिमाग पर काजल का चेहरा, उसकी बेबसी, उसका आत्मसमर्पण, उसकी नेकनीयती नाचती रहती है और स्वामी प्रज्ञानन्द जैसे पिताओं का आत्मकेन्द्रित स्वार्थ और सामाजिकता से कटकर धार्मिक आदर्शों के खोखलेपन के साथ जुड़ने की बात मन को

कुरेदती रहती है।"

"तुमने अनुराधा के साथ शादी कर ली। इतनी सुन्दर, स्मार्ट लड़की के साथ क्या तुम सुखी नहीं हो? देखो प्यारे बन्धु! कुछ अन्यथा मत लेना, तुम्हारा मूड देखकर लग रहा है जैसे तुमने हमेशा स्थितियों के साथ समझौता किया है।"

"छोड़ो इस बात को। विघटन और 'के आँस' भरे समय में समझौतों और सुख की बात करना व्यर्थ है।"

"स्वामी प्रज्ञानन्द अब तो काजल के साथ रहते हैं न?" मैंने उत्सुकतावश पूछ लिया।

"नहीं। वह आदमी संन्यासी जो ठहरा। सांसारिकता से दूर चले जाने पर फिर सांसारिकता से नाता जोड़ना धर्म आज्ञा नहीं देता। तुम सुनना चाहोगे? उस दिन काजल से मिलने के बाद क्या हुआ? काजल से विदा लेने के बाद अनुराधा, प्रज्ञानन्द स्वामी और मैं नीचे आकर कार में बैठ गए। पिछली सीट पर पहले स्वामी प्रज्ञानन्द बैठे, फिर अनुराधा। मैं सामने वाली सीट पर बैठने लगा तो स्वामी प्रज्ञानन्द बोले—"बेटा अमित, हमारे साथ ही बैठो।" मैं भी पीछे की सीट पर अनुराधा की बगल में बैठ गया। कार चल बड़ी। मैंने स्वामी प्रज्ञानन्द से कहा—"पहले घर चलते हैं। काजल का बंगला देखकर आपको प्रसन्नता का अनुभव होगा।"

"ना। मुझे मेरे आश्रम पर ही छोड़ दो।" स्वामी प्रज्ञानन्द ने जोरों से कहा तो मैं चौंक पड़ा। अनुराधा उनकी ओर साश्चर्य देखने लगी। फिर बोली—"पिताजी! अब मैं आपको अलग नहीं रहने दूँगी।"

"ना बेटी ना। हठ मत करो। मेरा रास्ता अलग है। तुम लोग सुखी रहो—यही मेरा सबसे बड़ा सुख है। सबसे बड़ी शान्ति है।"

मैंने कहा—"आप दस साल से घर-परिवार छोड़कर अकेले रह रहे हैं। अब अचानक इस आनन्द-मिलन पर जब हम आपको पाकर प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं, आप हमें छोड़कर न जाएँ। काजल यूँ ही दुःखी है। यह सुनकर कि आपने हमें स्वीकार नहीं किया उसका दिल टूट जायेगा। उसे इस समय अधिक अपनापन चाहिए।"

"अमित बाबू! काजल बड़ी बहादुर लड़की है। वह कभी नहीं चाहेगी

कि उसके पिता का अधोपतन हो।''

''परिवार के साथ रहना आप अधोपतन मानते हैं ? जिस लड़की ने परिवार के लिए बलिदान कर दिया, उसी असहाय लड़की के प्रति आपका यह कर्त्तव्य नहीं कि उसकी खातिर थोड़ा-सा त्याग करें ? विशेषकर, इस समय जबकि वह जीवन और मृत्यु के बीच जूझ रही है ?''

स्वामी प्रज्ञानन्द का चेहरा खीझ, क्षोभ और नाराजगी से बुझ-सा गया। कुछ देर के मौन के बाद बोले—''मुझे मेरे आश्रम पर ही छोड़ दो।'' उनकी बात सुनकर अनुराधा उदास भाव से मेरी ओर देखने लगी। मैं सोच नहीं पा रहा था कि ऐसी स्थिति में भला एक संन्यासी को किस तरह समझा सकता हूँ, जबकि उसका मस्तिष्क अपना लोक-परलोक सुधारने के लिए ही धर्माडम्बर से बुरी तरह ग्रसित हो। मैंने अनुराधा का हाथ थपथपा कर सान्त्वना दी तो उसकी आँखें सजल हो उठीं। रुँधे हुए कण्ठ से स्वामी प्रज्ञानन्द से बोली—''पिताजी ! कितनी मुश्किल से आपको हमने वापस पाया है। फिर भी आप हमसे दूर रहना चाहते हैं !'' स्वामी प्रज्ञानन्द ने आँखें बन्द कर लीं। बोले कुछ नहीं। कार मालवीय रोड से आगे बढ़ती हुई चौक की तरफ मुड़ी तो मैंने ड्राइवर से कहा—''पहले दशाश्वमेघ घाट चलो ! स्वामी जी को छोड़ना है।''

वैज्ञानिक और ऐतिहासिक तथ्यों के बावजूद मैंने धर्मग्रन्थों में पढ़ा है, उपदेशकों, पण्डितों से सुना है कि संसार को किसी अलौकिक शक्ति यानी विधाता ने बनाया है। वही हमारे सृजन, विघटन और भाग्य का नियंता है। सभी मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार फल पाते हैं। पाप, पुण्य का लेखा-जोखा प्रारब्ध के रूप में मिलता है। विधाता परम दयालु, कृपालु और

संकट-मोचन हैं। परमपिता परमेश्वर कष्ट-निवारक, भव-भय भंजक, जग-हितकारी है। पर यह कैसा आश्चर्य है कि उसकी बनाई हुई दुनिया में करोड़ों लोग गरीबी, भुखमरी, बीमारी और असहाय स्थितियों के बीच जीवन-यापन करते हैं। अस्तित्व के लिए संघर्षों को झेलते-जूझते टूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। और उनका छोटा-सा इतिहास गरीबी के मलवे के नीचे दवकर मिट जाता है विधाता को ऐसे जीवों के प्रति क्यों दया, ममता नहीं। वह तो आदि सृष्टिकर्त्ता हैं, महान् हैं, विश्वव्यापी हैं, फिर इस धरती पर इतना अन्याय, इतनी प्रताड़ना, शोषण, बाढ़, अकाल, युद्ध क्यों ? उसकी इसी दुनिया में काजल जैसी लड़कियाँ भी पैदा होती हैं। अपने आर्थिक अभावों के बीच परिवार की प्राण-रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाती हैं जहाँ जीवन उनके लिए भार बन जाता है। इस विधाता द्वारा बनाई गई दुनिया में वे अकेली, बिल्कुल अकेली रह जाती हैं, और उस स्थिति में अकेलापन भी उनका अपना नहीं होता। एकांकी क्षणों की घुटन उनके सम्पूर्ण जीवन पर हावी हो उठती है। उसी घुटन, छटपटाहट और उदासी के बीच मैंने काजल को तड़पते हुए देखा है। उसे विधाता और उसकी बनाई हुई दुनिया के प्रति आक्रोश और तिरस्कार से उफनते हुए देखा है, और देखा है उसका असीम साहस, अस्तित्व के लिए लड़ाई करने का हौसला। जिस दिन काजल को अस्पताल से मुक्ति मिलने वाली थी, 'वेली नर्सिंग होम' की केबिन नम्बर 4 में अनुराधा के साथ पहिएदार कुर्सी लेकर पहुँचा तो काजल कुछ क्षण तक कुर्सी की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखती रही और फिर एकबारगी फूट-फूटकर रो पड़ी। आँखें मेरी भी सजल हो उठीं। अनुराधा चुपचाप भरी-भरी आँखों से कभी मुझे और कभी काजल को ताक रही थी। मैंने काजल को सहारा देने के लिए उसके कंधे को थपथपाया तो वह और भी फूट पड़ी। कितनी दुःख-दायी, विचित्र स्थिति थी ! आह ! काजल अपनी दोनों टाँगें खो चुकी थी।

"दिल नहीं हारते। उठो घर चलो। लिव योर स्पिरिट !" मेरे कहने पर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। रुँधे हुए कण्ठ से बोली—"अमित बाबू ! मैं अपाहिज अब भला कैसे जी सकूँगी ? कौन मेरी देखभाल करेगा ? एक अपाहिज लूली-लँगड़ी लड़की को कौन चाहेगा ? शायद मुझे इस हालत में

देखकर मिस्टर अग्रवाल भी मुझसे घृणा करने लगें।"

ओह ! विधाता की बनाई हुई दुनिया और उसकी सन्तान की यह कैसी दुर्गति है ! मेरे मन में उस विधाता के प्रति तीव्र आक्रोश पैदा होता है। उस वक्त भी आक्रोश को दबाते हुए मैंने काजल से कहा था—"ईश्वर की लीला को क्या कहूँ ? धीरज रखो। तुम्हें मैंने हमेशा एक बहादुर लड़की के रूप में देखा है। आज भी इस विषम स्थिति में तुम्हारा साथ केवल तुम्हारा धैर्य ही दे सकता है।"

मैंने अनुराधा से कहा—"तुम काजल के कपड़े बदल दो ! मैं तब तक डाक्टर से मिलकर आता हूँ।"

डाक्टर से मैंने काजल के बारे में आवश्यक निर्देश ले लिये। अस्पताल के बिल का भुगतान किया। काजल ने कल ही अनुराधा को अपनी आलमारी की चाभी देते हुए कहा था—"आलमारी से रुपये लेकर अस्पताल का बिल चुका देना।"

अनुराधा ने सौ-सौ रुपये की गड्डी मेरे हाथ में थमाते हुए कहा था—

"अब आप इस घर के हो गए ! आप ही सँभालिए हिसाब-किताब। मुझसे नहीं होता। मैं गणित में हमेशा फेल होती रही। शायद भविष्य में भी फेल होती रहूँगी।" बिल भुगतान करते समय अनुराधा के कहे गए वाक्य मुझे याद हो आए। मुँह से निकल गया—"पागल !" डाक्टर रुपये गिन रहा था। क्षण-भर के लिए अचम्भित होते हुए मेरी ओर देखकर पूछा—"क्या कहा ?"

"जी, आपको नहीं। ऐसे ही एक बात याद हो आई।" पर डाक्टर की उत्सुकता कम नहीं हुई। उसी अचम्भित मुद्रा में मुझसे पूछा—"काजल आपकी कौन लगती हैं ?"

मैंने डाक्टर को ध्यानपूर्वक देखा—स्थूलकाय, अंडाकार चेहरा। उम्र कोई पचास के आसपास। शुद्ध हिन्दी का उच्चारण उस सूट-बूटधारी डाक्टर के मुँह से सुनकर आश्चर्य नहीं अच्छा लगा। मैंने पूछा—"डाक्टर, आप बनारस में ही रहते हैं ? यानी आपका जन्म-स्थान बनारस ही है न ?"

"हाँ, बनारस में ही रहता हूँ। आप कलकत्ता में क्या करते हैं ?

"जर्नलिस्ट हूँ, पत्रकार !"

"किस अखबार में ?"

" 'दैनिक आजकल' में ।"

"मिसेज काजल आपकी···" वह बोलते-बोलते बीच में रुक गया ।

"जी, मेरी मित्र हैं ।"

"ओह ! उनके पति तो एक बार भी एक्सीडेन्ट के बाद दिखाई नहीं दिए । क्या कहीं बाहर रहते हैं ? क्या काम करते हैं ?"

"जी, बिजनेस के सिलसिले में विदेश गए हैं ।" मेरे सामने कोई उपाय नहीं था, सिवाय झूठ बोलने के । सोचा, काजल की सामाजिक प्रतिष्ठा में जरा भी आँच नहीं आनी चाहिए ।

"आइ एम सॉरी !" रुपये कैश बाक्स में रखते हुए डाक्टर ने कहा—"पाँव बचा नहीं सका ।"

"डाक्टर ! जो कुछ सम्भव था आपने किया । बाकी तो विधाता के हाथ में है ।" विधाता शब्द बोलते हुए मुझे कष्ट हो रहा था । बिल का भुगतान देकर मैं काजल के केबिन में आया । तब तक वह तैयार होकर पहिए वाली कुर्सी में बैठ चुकी थी । उसकी आँखों में दुःख के असंख्य टुकड़ों में बँटे बादल छाए हुए थे ।

मैंने कहा—"तो अन्तिम विदा लो इस 'नर्सिंग होम' से ।"

"क्यों ? क्या फिर नहीं आ सकती ?"

"हरगिज नहीं ! बहुत नाटक किया तुमने । अब और नाटक नहीं चलेगा । कलकत्ते में दिल गँवाया और बनारस में टाँग ।" मैंने सहज होकर कहना चाहा । फिर सोचा था मेरी बात से वह मुस्करा उठेगी, पर वह गम्भीर होते हुए बोली—"तो मैंने नाटक किया ?"

मैंने देखा उसकी बड़ी-बड़ी विस्मय, जिज्ञासा से भरी आँखों में अभी भी वही चमक थी जिसे मैंने दस वर्ष पूर्व देखा था । उत्तरपाड़ा रेलवे स्टेशन पर, पहली मुलाकात के समय । बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें...।

मैंने उससे कहा था—"देखो, हम दुनिया में सिर्फ नाटक करने ही आए हैं । खैर छोड़ो इन बातों को । चलो अब यहाँ से जितनी जल्दी हो सके निकलो ।" काजल कुछ बोली नहीं । अनुराधा उसकी कुर्सी पीछे से

पकड़े ठेलती हुई ले चली। लिफ्ट से नीचे उतरकर कार तक आते-आते अनुराधा बोली—"अमित बाबू ! दीदी को कार में कैसे बिठाएँगे ?" काजल के चेहरे की ओर अनायास ही मेरी नजर चली गई। उसके मुँह पर चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। मैंने अनुराधा से पूछा—"तुम सहारा देकर बैठा सकोगी ?"

"हाँ ! कोशिश करती हूँ। दीदी का वजन अब काफी कम हो गया है।"

"चिन्ता मत कर अनू, अब मैं अपना वजन इतना कम कर लूँगी कि तू मुझे एक हाथ से उठा सकेगी।" काजल ने किंचित मुस्कराते हुए कहा। मुझे उसका स्वर अच्छा लगा। असम्भव लगने वाले वक्त जीने के लिए आशा और विश्वास की किरण आदमी के दिल में न होने पर वह जीवन की बाजी हारता चला जाता है। मैंने देखा, काजल में आशा और विश्वास अभी भी जीवित है। लिफ्ट से नीचे पहुँचकर हम लान में खड़ी कार की ओर चलने लगे।

"पिताजी क्यों नहीं आए ?" काजल की आवाज से मैं चौंक गया। कोई उत्तर देते नहीं बना। मैं पिछली सीट पर काजल के दायीं ओर और बायीं ओर अनुराधा बैठ गए। आज सवेरे ही मैं अनुराधा के साथ स्वामी प्रज्ञानन्द से मिलने गया था। देखा, दशाश्वमेध घाट पर उनके प्रवचन-स्थल पर भक्तजनों की भीड़ सवेरे से ही एकत्रित है पर स्वामी जी का कहीं पता नहीं था। कुछ देर तक हम दोनों भक्तों की भीड़ में बैठे उनकी प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु इतनी देर तक उन्हें अनुपस्थित देखकर मन में आशंका उत्पन्न हो गई। मैंने अनुराधा से कहा था—"या तो बाबा अस्वस्थ हो गए हैं अथवा कोई दुर्घटना हो गई। चलो उनके निवास पर देखते हैं।"

"आप जानते हैं उनका घर ?" अनुराधा विस्मय से बोली।

"हाँ ! पर इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? क्या साधु-संन्यासियों का निवास-स्थान नहीं होता ?"

"नहीं अमित बाबू, ऐसा मैं नहीं सोचती। मैं तो कहना चाह रही थी कि आप उनके बारे में इतना कुछ जानते हैं, परन्तु हमें कभी बताया

नहीं।"

"खैर, छोड़ो ये सब बातें। चलो पहले उन्हें खोजते हैं।"

मैं नहीं चाहता था कि स्वामी जी के भक्तों को उनके बारे में उनकी घरेलू जिन्दगी का पता चले। इसीलिए तत्काल वहाँ से उठकर चल दिया। दशाश्वमेध घाट को पार कर हनुमान मन्दिर के बगल वाली छोटी गली में चलने लगे। अनुराधा बिना कुछ बोले चुपचाप साथ-साथ चल रही थी। मैंने उसका कौतूहल तोड़ते हुए बताया—"पहले दिन जब मैं बाबा से मिला था तो मुझे वे अपने निवास-स्थान पर लाए थे। बहुत सारे फल, मिठाइयाँ, मेवे खिलाए थे। सरस्वती देवी धर्मशाला में एक छोटा-सा कमरा है। पर यहाँ बहुत कम रहते हैं। ज्यादातर गंगातट पर ही समय बिताते हैं। धर्मशाला आने पर देखा कमरे में ताला लगा है। कुछ सन्देह हुआ। जाकर धर्मशाला के मैनेजर से पूछा—"स्वामी प्रज्ञानन्द कहाँ मिलेंगे?"

मेरा वाक्य पूरा होने के पहले ही मैनेजर ने अपनी कुर्सी पर पसरते हुए कहा—"वो तो कल शाम को ही यहाँ से चले गए।"

"कहाँ चले गए?" मेरे पूछने पर वह रजिस्टर के पन्ने पलटने लगा। एक जगह आँख टिकाकर बोला—"कुछ लिखा नहीं। कुछ बताया भी नहीं।"

निराश होकर अनुराधा और मैं वहाँ से वापस चल पड़े। उन्हें खोजने के लिए पूरे दशाश्वमेध घाट पर पण्डों से तथा साधुओं से पूछताछ की, पर उनके बारे में कोई सुराग न पाकर हम निराश मन लौट आए। रास्ते-भर अनुराधा रुआँसी-सी चुपचाप मेरे साथ चलती रही। न मैंने कोई बात की और न उसी ने। और अब काजल पिताजी के बारे में मुझसे पूछ रही थी। मैं क्या उत्तर देता भला। मुँह से निकल गया—"शायद व्यस्त होंगे, धर्मचर्चा में। बड़े महात्मा हो गए हैं। भक्तगण से पीछा छुड़ा पाना मुश्किल हो गया है।"

अनुराधा मेरे मुँह की ओर साश्चर्य देखने लगी तो मैंने इशारे से कहा कि वह चुप रहे। पर काजल ने दोबारा मुझसे प्रश्न किया—"अमित बाबू! बाबा ने आखिर संन्यास क्यों ले लिया?" यह प्रश्न इतना जटिल

था कि यदि मैं उत्तर भी देता तो काजल का दिल टूट जाता और यदि कुछ भी न बोलता तो वह नाराज हो जाती। मैंने उससे पूछा—"अच्छा तुम बताओ काजल! जो आदमी जीवन में सब तरफ से निराश हो गया हो वह क्या करे? या तो अस्तित्व के मोर्चे पर संग्राम करे अथवा घर-संसार छोड़कर धर्माश्रयी जीवन बिताए। मन और बुद्धि से लड़ाई करे। परन्तु मेरा विश्वास है कि मन से कमजोर होने पर व्यक्ति को घरबार छोड़कर साधु-संन्यासी हो जाना चाहिए। भिक्षा-यापन करना चाहिए या अर्थनीति का सहारा लेकर मठाधीश बन जाये या फिर स्वान्तः सुखाय आत्महत्या कर लेनी चाहिए। तुम्हारे पिताजी का जीवन भी इसी प्रकार का रहा है। अब हमें उनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे अपने आप में खुश हैं।"

"परन्तु अमित बाबू! यह कैसा संन्यास-धर्म है कि अपनी सन्तान को विपत्ति में पड़ा देखकर उसकी ओर से आँखें मूँद ले। काश! आप जान पाते, मैं पिताजी को कितना प्यार करती हूँ! उनकी खुशियों के लिए मैंने जीवन में क्या-क्या नहीं किया।" काजल की आँखें सजल हो उठीं। मैंने उसे सान्त्वना देने की नीयत से कहा—"मैं जानता हूँ। लिव योर स्पिरिट! धर्मज्ञान की सतह के ऊपर उठ जाने पर अपने-पराये, प्रिय और अप्रिय में कोई फर्क नहीं रह जाता। पिताजी भी इस स्थिति में पहुँच चुके हैं शायद। नहीं तो तुम्हें देखने जरूर आते।"

काजल मौन रही। अनुराधा ने कुछ देर की चुप्पी के बाद कहा—"अमित बाबू! पिताजी हमारे साथ रह सकते हैं। हम उन्हें फिर से मनाएँगे।"

काजल ने कहा—"नहीं अनू! हम बाधा नहीं देंगे। उनका रास्ता कुछ और है, हमारा कुछ और।" फिर कुछ देर खामोश रहने के बाद बोली—"मैं कितनी हतभागिनी हूँ कि एक ही स्थान पर रहते हुए पिता से अलग रही!" भावावेश में वह रो पड़ी। काफी देर तक उसी अवस्था में आँचल से आँसू पोंछते हुए सिसकती रही। मेरे दिमाग में स्वामी प्रज्ञानन्द के अचानक गायब हो जाने का रहस्य समझ में नहीं आया आज तक।

"'विदूषक' व्रार में आकर गाने लगा ।

हाथ में एकतारा, पाँव में घुंघरू, खूब सधी हुई तान, ऊँचे स्वर में गाने लगा—

"मेरे सपने छीन जाता कोई मुझे तो बचाओ ।

मेरा हृदय लिए जाता भला कोई तो बचाओ···"

मैंने अमिताभ से कहा—"देखो, लोग इसे 'विदूषक' कहते हैं। पागल कहते हैं। बहुरुपिया कहते हैं। परन्तु मैं इसे इस देश की अन्तरात्मा का गायक मानता हूँ। इसके गीत में आज का समय-सन्दर्भ ध्वनित होता है ।"

मित्र ने कहा—"हाँ यह उन सभी 'विदूषकों' का प्रतिनिधित्व करता है जो जन-सेवा के कन्धे पर आत्म-लोभ की बन्दूकें रखे सत्ता के लिए नोच-खसोट कर रहे हैं । आह ! कैसा समय आ गया है ?"

वह खामोश हो गया । विषयान्तर के लिए नहीं बल्कि अपनी उत्सुकता की गाँठें खोलने के लिए मैंने उससे पूछा—"बनारस में ही अब तुम रहोगे, ऐसा लगता है ।"

"हाँ । पर शायद नहीं । मैं बनारस को कई दृष्टियों से पसन्द नहीं करता । अब वह महज एक पाखण्ड शहर के कुछ नहीं रह गया ।"

मैंने उत्सुकतावश कहा—"तो तुम बनारस से वापस चले आए ! अनुराधा, काजल को छोड़कर ?"

"ना । कुछ दिनों के लिए काजल के आग्रह पर वहाँ ठहरना पड़ा । इसलिए भी कि अनुराधा अकेली थी। उस दुर्घटना के बाद उसके मन-मस्तिष्क पर बहुत बड़ा आघात लगा था । मैं उसे खुश देखना चाहता था ।"

'विदूषक' 'बार' से बाहर चला गया । मित्र ने सिगरेट जलाकर गहरा कश लिया उसके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ झलकने लगीं । मुझे महसूस हुआ कि वह अन्दर से काफी परेशान है । कुछ देर की चुप्पी के बाद उसने बताया—"हालाँकि ऑफिस से 12 दिनों की लम्बी अनुपस्थिति मेरे लिए

आत्महत्या करने जैसी थी। फिर भी स्थितियों के बीच मैं बेतरह उलझ गया था। मुझे लग रहा था जैसे काजल और अनुराधा के लिए मेरा वहाँ कुछ दिनों के लिए और अधिक ठहर जाना आवश्यक है। अनिवार्य है।

उस दिन रविवार था। सवेरे उठते ही देखा कि अनुराधा चाय की ट्रे लिए मेरे कमरे की ओर चली आ रही है। मैं बिस्तर से उठते हुए बोला—"तो आखिर ड्यूटी तुमने शुरू ही कर दी!"

"चिन्ता मत कीजिए! आप पहले चाय पीजिए फिर नाश्ता और दोपहर का भोजन भी। मेरे हाथों से पकाया हुआ।"

मैंने चाय का प्याला हाथ में लेते हुए कहा—"रात का भोजन नहीं?"

"हाँ वो भी, घबड़ाइए नहीं।"

"तुम आज खुश लग रही हो!"

"हाँ, क्योंकि दीदी जो अस्पताल से आ गई हैं।"

"काजल अभी सो रही है या जगी है?"

"वे तो कब की उठ गईं। उन्हें चाय पिलाकर बाहर लान में बैठा आई हूँ। उन्हें लान में बैठना बहुत अच्छा लगता है।"

"तो चलो हम भी वहीं चलते हैं।"

हाथ में चाय का प्याला लिए हुए जाने के लिए उठ खड़ा हुआ फिर एक साँस में गर्म चाय गले के नीचे निगलकर पाँवों में चप्पल डालकर लान में निकल आया।

सवेरे की सुनहरी रोशनी, पीले कैंडीटफ्ट तथा रंग-बिरंगे पीले, बैंगनी, सफेद डालिया, लाल गुलाब और सफेद, पीले सूर्यमुखी फूलों पर पड़ रही थी। घास पर सफेद मोतियों-जैसी ओस की बूँदें धूप में चमक रही थीं। दो माली गुलाब की क्यारियों में काम कर रहे थे। काजल पहिएदार कुर्सी पर बैठी उन्हें आवश्यक निर्देश दे रही थी। उसका यह बदला हुआ मूड देखकर मुझे अच्छा लगा। मैंने कहा—"गुड मार्निंग मैडम!" काजल ने पीछे मुड़कर देखा—"गुड मार्निंग अमित बाबू! आप मुझे मैडम क्यों कह रहे हैं?"

"चूँकि आप मैडम हैं। इस देश में मैडम कहने की परम्परा अँग्रेजों ने

शुरू की। मुगलों के जमाने में बेगम कहने का रिवाज चला। फिर अँग्रेजों की मेमें मैडम कहलाने लगीं। भारत में सामन्तवादी व्यवस्था थी। उसने भी 'मैडम' लेडी शब्द अपना लिया। तुम अब इतनी बड़ी कोठी की मालकिन हो, इतने बड़े धनी व्यक्ति की पत्नी हो। हर तरह से मैडम हो। मेम साहब हो। लेडी हो।"

"नहीं-नहीं, सवेरे-सवेरे आप मुझे उत्तेजित न करें। प्लीज ! आपके लिए मैं सिर्फ काजल हूँ। मैडम-वैडम नहीं।"

"दीदी ! नाश्ते में तुम क्या खाओगी ?" पीछे से अनुराधा की आवाज सुनकर मैं चौंक पड़ा। उसे देखने लगा—लाल मखमली गाउन में सुन्दर लग रही थी। अलसाई अलकें कंधे के पीछे फैली थीं। उसके चेहरे पर अब भी नींद की खुमारी थी। मैंने मन-ही मन सोचा, उसने अपनी दीदी के लिए आज तड़के ही उठकर काम शुरू कर दिया। कल जो मैंने उसे हिदायत देते हुए कह दिया था—"तुम यह सब कैसे सँभाल सकोगी ?" शायद मुझे दिखा रही है। वह सँभाल सकती है। काजल की सेवा करने में जरा भी पीछे नहीं रह सकती। मैंने अनुराधा से कहा—"डाक्टर ने जैसे हिदायत दी है, उसी तरह का खानपान काजल के लिए कुछ दिन चलेगा। हाँ, मुझ जैसे खब्बू पत्रकार से जरूर पूछ सकती हो कि नाश्ते में क्या खाऊँगा। यानी यही कि आमलेट, एक टोस्ट और बढ़िया-सी कॉफी।"

"बस ! यह भी कोई नाश्ता है।" अनुराधा ताना मारते हुए बोली। अब तक मैंने काजल की पहिएदार कुर्सी को पीछे से चलाते हुए लान के दूसरी ओर लिए चल रहा था। अनुराधा भी मेरे साथ-साथ धीरे-धीरे मेरे समानान्तर चलती जा रही थी। काजल से मैंने कहा—"आज शाम की गाड़ी से मुझे कलकत्ता वापस लौटना होगा। कलकत्ता से आए कई दिन हो गए। अखबार में नौकरी करना बड़ा जोखिम का काम है। इतनी गैरहाजिरी नहीं चलेगी। चार दिन की छुट्टी लेकर आया था और आज पूरे बारह दिन हो गए।"

"कुछ दिन और रह जाइए अमित बाबू ! आपके यहाँ रहने से अच्छा लग रहा है। आप नहीं होते तो मैं कैसे, क्या करती, सोचकर आश्चर्य लगता है। भगवान ने आपको इस संकट से उद्धार करने के लिए ही भेजा

है।"

"कोई उपाय नहीं काजल ! मुझे कल दोपहर तक कलकत्ता पहुँचना ही होगा। अनुराधा सब सम्भाल लेगी। देखो न, आज सवेरे से ही अपना काम शुरू कर दिया है।"

काजल उदास हो उठी। अनुराधा कुछ बोली नहीं। अपने आप में खोई, कुछ सोचते हुए चलती रही। मैंने काजल से दोबारा कहा—"अनुराधा सब सम्भाल लेगी। इसका उदाहरण इसने आज प्रस्तुत कर दिया। सवेरे से ही किस तरह चाय, नाश्ता, खाना को लेकर चिन्तित है।"

"हाँ, पर मैं जानती कि आप आज ही जाने वाले हैं तो इतना सारा खाने का क्यों भला इन्तजाम करती। दो नौकरों को बाजार करने के लिए भेजा है। मटर पनीर, चाऊ मी, वेजीटेबिल हैम्वर्गर बनाऊँगी।"

काजल बीच में ही बोली—"अमित बाबू ! आप कलकत्ते से यहाँ नहीं आ सकते ? अखबार या किसी और काम से। बनारस में आपका मन लग जायेगा। कहिए तो मैं 'आज' वालों से बातचीत करूँ। मेरे पति के साथ बहुत अच्छी दोस्ती है। उसके मालिक अच्छे व्यक्ति हैं।"

"देखो, पहले कलकत्ते में ट्राम गाड़ी घोड़े से चलती थी, जैसे यहाँ बनारस में ताँगा घोड़े से चलता है। एक अँग्रेजी पत्र के घोड़े को हिन्दी की गाड़ी में जोतना कुछ इसी तरह है।"

"आप हमारे साथ ही रहें। बनारस से फ्रीलैन्स जर्नलिज्म करें। मैं आपके लिए अनुवादक रख दूँगी जो अँग्रेजी या बँगला से हिन्दी में अनुवाद कर दिया करेंगे। या अपना कोई पत्र निकालिए, रुपये-पैसे से मैं मदद करूँगी।"

"नहीं, ऐसा सम्भव नहीं। बनारस में रह नहीं पाऊँगा। फ्रीलांसर होना भी यहाँ सम्भव नहीं।" मेरी बात से काजल चिन्तित हो उठी। अनुराधा को मेरे बैठने के लिए कुर्सी लाने को कहा। अनुराधा बँगले के बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सी उठा लाई। मैं अनुराधा के सामने बैठ गया। अनुराधा ने कहा—"मैं नाश्ते का प्रबन्ध करती हूँ। अमित बाबू, आप जल्दी तैयार हो जाइए !"

काजल ने कहा—"अमित बाबू ! अब आप हमारे अपने हो गए हैं। आपके बिना मैं एक कदम भी नहीं चल पाऊँगी । मुझे अपने बारे में इतनी चिन्ता नहीं जितनी अनुराधा के बारे में है। आप उसे ग्रहण कर लें तो मुझे शान्ति मिले। अब तो यह जिन्दगी भार-जैसी महसूस हो रही है। मैं रात-भर सो नहीं सकी । पिताजी के बारे में, अनु के बारे में और मिस्टर अग्रवाल के बारे में सोचती रही। इन सबके बीच अब आप ही मुख्य पात्र रह गए हैं। उनको मैंने पत्र लिखा था पर कोई उत्तर न पाकर चिन्ता हो रही है। कलकत्ता भी जाना था पर अब इस हालत में भला कैसे जा पाऊँगी। वे मुझे अपाहिज अवस्था में देखकर···" काजल की आवाज बीच में रुँध-सी गई । आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगीं।

"काजल ! आदमी परिस्थितियों से बँधा हुआ होता है। तुम्हारे साहब तुम्हें इस स्थिति में भी स्वीकार करेंगे । देखा तो नहीं उन्हें पर जहाँ तक मुझे मालूम हो सका है उनके बारे में, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ऐसे व्यक्ति चाहे जितने बुरे हों परन्तु जज्बात में ईमानदार होते हैं।"

"हाँ, मैं भी यही सोचती हूँ। परन्तु मुझे पहले ही उन्हें सारी बातें लिख देनी चाहिए थीं । आज इस दुर्घटना को हुए करीब बीस दिन हो गए। मैं सोच रही थी कि आप कलकत्ता जा रहे हैं तो उनसे मिल लेंगे।"

"मैं ! मुझे वे पहचानते तक नहीं । फिर अचानक अपने घर-परिवार की इतनी सारी बातें मेरे मुँह से सुनकर वे न जाने क्या सोचेंगे ?"

काजल गम्भीर होकर कुछ देर तक सोचती रही, फिर बोली—"सारी स्थितियों को आप स्पष्ट कर सकते हैं। मैं उन्हें अलग से पत्र भी लिख दूँगी। वे बुरा नहीं मानेंगे।"

"ठीक है। मैं उनसे जरूर मिलूँगा। किस जेल में हैं ?"

"अलीपुर सेन्ट्रल जेल।"

मेरे दिमाग में एक भारी-भरकम चेहरा टँग गया जिसे नववधू बनी काजल के साथ बँगले के ड्राइंगरूम की दीवाल के फोटो फ्रेम में देखा है। बड़ी-बड़ी मूँछें, गोल-सा चेहरा, मोटे होंठ, छोटी-छोटी पर पैनी आँखें। पीछे की ओर पाटी पारे हुए सिर के लम्बे-लम्बे बाल। लाल टाई और

नीला सूट । पर अब तो वे जेल के कपड़ों में होंगे । हाफ पैंट और धारीदार हाफ कमीज, गले से लटकती हुई नम्बर प्लेट ।

"पिताजी यदि आते तो मैं उन्हें भी आपके साथ कलकत्ता भेज देती । पर वे शायद ही आएँ। बड़े आत्मसम्मानी व्यक्ति हैं । जीवन में कभी भी हार न मानना उनकी प्रतिज्ञा है । परन्तु मैंने जब से होश सँभाला है, देख रही हूँ वे बराबर परास्त होते जा रहे हैं । परास्त न होते तो हम लोग नारायणगंज की इतनी बड़ी जागीर और मकान छोड़कर पूर्व बंगाल से यहाँ दाने-दाने के लिए मोहताज नहीं होते और आज मेरी यह दुर्दशा न हुई होती ।"

"तो क्या तुम लोग पूर्व बंगाल के हो ?"

"अब तक आपको हमारी बातचीत से मालूम नहीं हो सका ? मैं तो समझती थी पत्रकारों के पास तीसरी बुद्धि होती है और वे बातों की पर्त-दर-पर्त में घुसते-पैठते चले जाते हैं । दिमाग से ज्यादा उनकी नाक लम्बी होती है । हर बात को सूँघकर बता सकते हैं ।"

मैंने हँसते हुए कहा—"तुम तो दस साल से देख रही हो, मेरी नाक वैसे की वैसी ही है। तुम्हें सूँघकर तुम्हारे दादा, परदादा का इतिहास जान सकूँ या तीसरी दुनिया की बात सोच सकूँ, ऐसा ज्ञान मेरी बुद्धि की झोली में नहीं है ।"

"आप जब पहली बार उत्तरपाड़ा मेरे घर पर आए थे तो मैंने आपको नजरुल इस्लाम का लिखा हुआ गीत और पूर्व बंगला का ग्राम्य गीत सुनाया था । मैं समझ रही थी कि आप समझ गए होंगे। मुझे पूर्व बंगाल की मिट्टी से क्यों इतना लगाव है ।"

"पिताजी के बंगला बोलने के लहजे से तो मैं समझ गया था पर उनसे किसी विषय पर कोई खास चर्चा न हुई और तुम्हारी माँ ने इतना अधिक खिला दिया था कि पेट सहलाते हुए ही घर लौटना पड़ा था। पूर्व बंगाल में अब भी कुछ बचा है यानी घर, जमीन ?"

"नहीं, अब कुछ नहीं बचा । जीते जी ही सब कुछ छिन गया था। उन्नीस सौ छप्पन में हम लोग घर, गाँव छोड़कर भागे थे । बहुत अत्याचार हुआ था ।"

"तुम लोगों की समाज या शासन ने कोई मदद नहीं की ?"

"ना। उस वक्त पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं के विरुद्ध धार्मिक और राजनैतिक युद्ध चल रहा था। गाँव-गाँव में पर्चे बाँटे जा रहे थे। रेडियो पर लगातार प्रचार किया जा रहा था कि हिन्दुस्तान में मुसलमानों पर अत्याचार किया जा रहा है। कत्ले-आम हो रहा है। दिन-दहाड़े उनके घरों में आग लगाई जा रही है। उनकी औरतों की इज्जत बरबाद की जा रही है। बस यही प्रचार स्थानीय मुसलमानों को उत्तेजित कर रहा था। उनके दिमाग में बदले की आग धधक रही थी। दिल में नफरत का तूफान उठ रहा था। पिताजी ने आजादी की लड़ाई में भाग लिया था, जेल भी गए हैं। नेताजी के भक्त रहे हैं। उन्होंने इस प्रचार के विरोध में कुछ जगहों पर जनसभाएँ कीं। लोगों को समझाने के लिए गाँव-गाँव पदयात्रा की। परन्तु उन्हें गद्दार और काफिर की उपाधियों से सम्बोधित किया जाने लगा। फिर अचानक एक रात पूरे गाँव में आग लग गई। चारों ओर हाहाकार मच गया। उस भगदड़ में हम भी शरीक थे। आँखों के सामने सैंकड़ों घर धू-धू कर जल रहे थे। 'बचाओ-बचाओ' स्त्रियों-पुरुषों और बच्चों के कातर आर्त्तनाद की आवाजें चारों ओर उभर रही थीं। कुछ बचाया भी नहीं जा सका। आखिर हमने भी जलते हुए, क्षार-क्षार होते गाँव को अन्तिम प्रणाम किया। पिताजी, माँ और मैं। तब मैं पाँच साल की थी। रात के अन्धकार में हम गाँव के और लोगों के साथ चलते-चलते शादीपुर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ हजारों लोग पहले से ही भारत जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ उस वक्त जवान थीं। 25 साल की। पिताजी उनके बारे में चिन्तित हो रहे थे। मजहबी गुण्डे उन्हें कहीं पकड़ न ले जाएँ। हमेशा माँ का हाथ पकड़े रहते। तीसरे दिन भी रेल नहीं मिली। सभी भूखे, भयातुर, थके रेल की प्रतीक्षा में प्लेटफार्म पर बैठे थे। फिर निराश होकर हम सब पैदल ही भारत की ओर चल पड़े। बीच में सुनाई पड़ा कि सीमा पर मुसलमानों का एक दल मारने-लूटने के लिए तैयार खड़ा है। लगभग पाँच दिनों तक भूख-प्यास से लड़ते, खाली पेट हम चलते रहे। किसी के पास कुछ खाने के लिए यदि था तो लाई चिउड़ा

और नारियल के लड्डू। उसे भी डर के मारे कोई नहीं खा रहा था क्योंकि सैकड़ों भूखे लोग जो साथ थे। किसे दें, किसे न दें। एक जगह तो मारपीट की नौबत आ गई क्योंकि एक भद्र बंगाली औरत ने भूखे बच्चे को खिलाने के लिए एक नाडू (नारियल का लड्डू) तथा मूड़ी (लाई) दे दी थी। बस फिर क्या था, उसे कई औरतें गालियाँ देने लगीं। स्वार्थी, निगोड़ी कहने लगीं। उसके पति ने गुस्से में प्रतिवाद किया तो औरतों के मर्दों ने मारपीट शुरू कर दी। उस बेचारे भद्र आदमी की गठरी में जो कुछ खाने लायक बचा था, सब छीन लिया गया। स्वामी-स्त्री लहूलुहान हो गए। बच्चा उसी मारपीट में दबकर मर गया। आह, कैसा हृदय-विदारक दृश्य था। पिताजी यूँ ही दुबले-पतले कमजोर हैं, मुझे कभी गोद में कभी कन्धे पर उठाकर थोड़ी दूर चलते कि हाँफने लगते। फिर मुझे नीचे पटक देते। मैं भूख और थकान से सुबकने लगती। उस आततायी घड़ी का स्मरण आते ही दिमाग सुन्न पड़ जाता है। पाँच दिनों की लगातार कठिन यात्रा करने के बाद हम खुलना पहुँचे। सीमा पार होते ही देखा, एक आम के बाग के नीचे बहुत से कैम्प लगे हैं। हमें वहाँ गुड़ और चिउड़ा खाने को दिया गया। वहीं रात में विश्राम किया। फिर कई दिनों तक वहीं कैम्प में पड़े रहे। वहीं हमें पता चला कि नारायणगंज से आने वाले सभी शरणार्थियों को दण्डकारण्य भेजा जाएगा। मैंने आज तक यह जगह नहीं देखी पर उस वक्त पिताजी ने माँ से जो कुछ बताया था अब भी मुझे याद है कि वहाँ पथरीली जमीन और जंगल है। बहुत ऊबड़-खाबड़ स्थान है। फिर क्या था, कुछ और परिवारों के साथ हम एक रात अँधेरे में कैम्प छोड़कर भाग निकले। आश्रय की खोज में चलते-चलते सियालदह स्टेशन और फिर हावड़ा स्टेशन पर कुछ दिन गुजारे। पिताजी दिन-भर नये आश्रम की तलाश में लोकल ट्रेन पकड़कर भटकते रहते। आखिर हमें उत्तरपाड़ा में रवीन्द्र नगर में छोटी-सी जगह मिल गई। एक बंगाली परिवार को पिताजी पर दया आ गई थी। पन्दह रुपये महीने घर भाड़ा तय हुआ। माँ को उस भद्र परिवार में नौकरानी का काम भी मिल गया। तब से यानी सन् छप्पन से हम लोग उत्तरपाड़ा में ही रहते आए। मैं वहीं के एक स्कूल में भर्ती करा दी गई। पिता जी की क्लाइव जूट मिल

में नौकरी लग गई। पिताजी ने नौकरी मिलने पर मां को काम से छुड़ा दिया। किसी तरह जिन्दगी की गाड़ी चलने लगी। परन्तु, पिताजी की नौकरी छूटने के बाद दिमागी तनावों के कारण वे दिन-पर-दिन कमजोर और अस्वस्थ होने लगे। उसी गरीबी, तनाव और दुःख-दारिद्र्य के बीच एक स्वर्ण वर्ण लड़की हमारे यहाँ पैदा हुई यानी अनुराधा। सन् पैंसठ की बात है, मैं तब नवीं कक्षा में थी। इसके पैदा होने पर पिताजी तथा माँ को भी बहुत दुःख हुआ। क्योंकि हमारी हालत बहुत खराब थी। मैं खूब खुश थी कि छोटी बहन हुई है। चार साल किसी तरह पिताजी ने गृहस्थी चलाई, तब तक मैं अठारह की हो गई थी। एक दिन हायर सेकेण्डरी परीक्षा देकर घर लौटी तो पिताजी ने मुझे अपने पास बुलाकर कहा—"बेटी काजल ! तू अब सयानी हो गई है। मैं अब काम करने लायक नहीं रहा। तू ही कहीं कलकत्ते में किसी आफिस में नौकरी ढूंढ़ ले। अब आगे पढ़ाई के लिए मैं कोई उपाय नहीं कर सकता।" मैं आज भी पिताजी की बेबस, रुआँसी, कातर वेदना से आहत सजल आँखों को याद करती हूँ तो मन भर उठता है। वे रो पड़े थे। काफी देर तक हिचकियाँ लेते हुए रोते रहे। कोने में बैठी माँ चुपचाप अपनी फटी साड़ी सीती रहीं और अनु अपनी गुड़ियों से खेलती रही। पिताजी की असमर्थता और घर की गरीबी देखकर मैंने निश्चय किया कि जो भी काम मिलेगा करूँगी। उस रात माँ ने खाना खाकर सोते हुए मेरे बालों में अपनी ममता बिखेरते हुए कहा था—"काजल, अब तू ही इस घर को सँभाल सकती है। तेरे पिताजी को जो कुछ फण्ड मिला था सो पढ़ाई और घर-गृहस्थी में सब खर्च हो गया।" मैं दूसरे ही दिन सवेरे अपना बैग कन्धे से उठाए निकल पड़ी थी। मेरी एक सहेली गारियाहाट में रहती थी। लोकल ट्रेन पकड़कर वहाँ से हावड़ा और हावड़ा से पाँच नम्बर की बस से गरियाहाट गई। सहेली को मैंने अपनी स्थिति बताई तो वह गम्भीर हो गई। उसने कहा—"तू चिन्ता मत कर। मैं कुछ-न-कुछ तेरे लिए करती हूँ। तू अगले रविवार को आ जा। मेरे घर कुछ दोस्त दोपहर को खाने पर आयेंगे।" मैं अगले रविवार को सहेली के घर पहुँची तो देखा उसके घर पर चार लड़के तथा दो लड़कियाँ पहले से ही अँग्रेजी धुन पर

नाच-गाने में मस्त थे। मुझसे भी उन लोगों ने गाने के लिए कहा पर मैंने मना कर दिया। मुझे गाना आता नहीं। फिर नाचने पर जोर दिया। नाचना भी नहीं आता था। एक लडके ने जबरदस्ती मेरी बाँह खींचकर उठा लिया। ''चलो मैं तुम्हें डान्स सिखाऊँगा।'' मैंने बहुत मना किया पर वह माना नहीं। मेरी सहेली अंजू सिंह बहुत उस्ताद थी इन सब मामलों में। उसने कहा—''काजल डोन्ट बी सिली। लेट अस इन्ज्वाय।'' पर उस आनन्द में मैं पसीने से तर-बतर थी। बाद में उस लड़के ने अपना नाम शोभन गुप्ता बताया। एक रईस बाप का इकलौता लड़का। अंजू का क्लास मेट। बिगड़ा हुआ नवाब। उसने मेरे कान के पास मुँह ले जाकर कहा था—''मैं तुम्हारी सब समस्याएँ जानता हूँ। अंजू ने बता दिया है। तुम कल से ही मेरे सैलून में काम पर आ जाओ। महीने में पाँच सौ रुपये दूँगा। सबेरे आठ बजे से दस बजे और शाम छः बजे से आठ बजे काम करना होगा।''

''फिर दिन-भर मैं क्या करूँगी भला? यानी बीच में कहाँ जाऊँगी? मैं तो कलकत्ते से बहुत दूर रहती हूँ।''—मैं घबराकर बोल उठी थी।

''मेरे साथ पिकनिक मनाना। खूब सैर-सपाटे करेंगे। तुम्हें पसन्द आएगा।'' उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर दबा दिया। उसकी आँखों में कामुकता का नशा चढ़ गया। मैं ना या हाँ कुछ भी नहीं कह सकी। अंजू ने आकर मुझे बधाई दी। शोभन को आँखों से इशारे करते हुए कहा—''नॉट बेड! इट विल हिट!'' मैं उस दिन इस नॉट बेड और हिट का अर्थ खोजते हुए गरियाहाट से उत्तरपाड़ा तक चलती जा रही थी और मथती रही दिमाग के समुद्र को। वे सारी आकृतियाँ, वाक्य, अँग्रेजी धुन पर नाचने, गाने और हुल्लड़बाजी करते हुए लड़के, लड़कियाँ, शोभन का मुझे जबरन बाँह पकड़कर उठाना, नाचना। नाचते हुए मुझे अपने बहुत करीब खींच लेना। कान में कुछ कहना। हँसना। ओफ क्या पागलपन है। मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगा। यह सब मेरे जीवन में बिल्कुल नया अनुभव था परन्तु मैं असमर्थ, लाचार लड़की थी। अभावों, गरीबी की मारी। दूसरे दिन शोभन के बताए हुए पते पर, पार्क स्ट्रीट पर 'न्यू ब्यूटी पार्लर' में जा पहुँची। देखा, शोभन पहले से ही उपस्थित था। वहाँ काम करने वाली लड़कियों से उसने मेरा परिचय कराया—शैली, चार्ली,

डिसोजा, आरती। वे मुझे देखकर मुस्कराती रहीं। मैं उस समय उनकी मुस्कान का अर्थ नहीं समझ सकी। पर जब अन्दर 'मासाज' यानी 'मालिश' करने के लिए छोटी-सी अँधेरी केबिन में पहुँची तो एकबारगी सहम कर डर गई। एक मोटा-ताजा भद्दा-सा आदमी दीवान पर जांघिया पहने नंगे बदन लेटा था। जैसा कि शोभन ने मुझे बताया था कि सिर्फ मालिश करनी है। मैंने इसके पहले कभी मालिश की नहीं थी और वह भी एक अपरिचित भद्दे खूसट मर्द की। मन ग्लानि से भर उठा था। छिः मैं क्या करने जा रही हूँ! किस रसातल में पहुँच गई हूँ! मन में उबकाई और घृणा भर गई। परन्तु दिमाग में एक साथ उभर रहे थे— बूढ़े असहाय पिता के सजल नेत्र। बीमार, माँ की बेबसी और अनु की गुड़ियों के साथ फटा फ्राक पहन कर खेलना।'''उस दिन मैंने उस अंधकार में अनुभव किया कि मैं स्वयं एक गुड़िया हूँ। वह आदमी मुझे देखते ही उठ खड़ा हुआ। मुझे बाँहों में भींचकर मेरे कपड़े खोलने लगा। मैं बचाव में पीछे हटती जा रही थी और वह मुझ पर हावी होता जा रहा था। वीभत्स दृश्य था। मैं एकबारगी चीख उठी थी। दरवाजा खोलने के लिए झपटी पर वह बाहर से बन्द था। कोई उपाय न था। असमर्थ, अशक्त हो उठी। उस भारी-भरकम मजबूत हाथों से बचने के लिए बेतहाशा छटपटा रही थी। वह मुझे प्रायः नंगी कर चुका था। मैंने अपने नाखून उसकी आँखों में चुभो दिए, वह आह कहकर एक ओर गिर पड़ा। मैं अपनी साड़ी, ब्लाउज सहेजते हुए दरवाजा खोलने के लिए आगे बढ़ी, पर तभी वह आदमी संभलकर उठा और गालियाँ बकता हुआ मेरी ओर झपट पड़ा—"देखो लड़की, मैं तुम्हें एक हजार रुपये दूँगा। चीखो-चिल्लाओ नहीं। यहाँ ऐसे ही होता है। 'मसाज', मालिश इसी को कहते हैं। इस कमरे के बाहर तुम बिल्कुल ऐसी हो जैसे किसी ऑफिस में काम करने जाओ। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैंने इतनी ज्यादा रकम आज तक किसी नई लड़की को नहीं दी। तुम बड़ी स्वीट हो, सुन्दर हो, अच्छी लड़की हो। शोभन ने मुझे सब कुछ बता दिया है तुम्हारे बारे में। और सुनो, इस पर भी तुमने ना की तो तुम्हें चोरी के आरोप में इसी वक्त पुलिस को दे दिया जायेगा।"

"कैसी चोरी ? मैंने तो कोई चोरी-वोरी नहीं की।" मैं चीख उठी।

"चोरी अभी तक तो नहीं की, पर राजी न होने पर चोरी का जुर्म अपने आप साबित हो जायेगा। फिर जेल में पता चलेगा, कैसी चोरी। उस वक्त तुम्हारे भूखे, गरीब माँ-बाप भला क्या सोचेंगे। उन पर क्या बीतेगी ?" कहते-कहते इस आदमी ने बढ़कर मुझे अपनी बाँहों के आगोश में जकड़ लिया। उसकी गन्दी साँसें मेरे मुँह, मेरे होठों पर छा गई थी। और अमित बाबू, उसी दिन काजल मर गई। उस नरपिशाच के पशुत्व के सामने मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ थी। एक जंगली भैंसा भरे-पूरे बसन्त-वन को उजाड़ने लगा। कोमल लतरों, कलियों को अपने शरीर से कुचल रहा था। मैं अपने उजड़े हुए वसन्त को वक्ष से छिपाए आँखों के आकाश में सावन के मेघ और दिमाग में अपमान का झंझावात लिए केबिन के बाहर निकली थी। शोभन ने मेरा कन्धा थपथपाया था, "शाबास !" ठंडा शर्बत मेरे पीने के लिए एक लड़की ले आई पर मैंने नहीं पिया। खाने के लिए बिस्कुट और चाय मँगाई, वह भी मैने नहीं खाया। आँखों से आँसुओं की लड़ी बरस रही थी। गला सूख रहा था। कहने के लिए कुछ भी बचा नहीं था। जीने के लिए भी कुछ बाकी नहीं रह गया था। उस दिन सीधे घर चली आई। रात का खाना भी नहीं खाया। माँ बार-बार जिद्द करने लगी तो कह दिया—"माँ सिर में दर्द है। भूख नहीं। पिताजी ने मुझे घूर-घूरकर देखा था, अधजली चिमनी के मद्धिम प्रकाश में। चिन्तित, उदास घर के बाहर जाकर बीड़ी पीते हुए एक कुर्सी पर देर रात तक सोचते बैठे रहे। मैं सोई नहीं। रात-भर छटपटाती रही। लग रहा था वही मोटा-भद्दा स्थूलकाय आदमी मेरे पास नंगा खड़ा होकर सौ-सौ रुपये के नोट गिनकर मेरी ओर अर्थभरी मुस्कान के साथ बढ़ा रहा है। मैं उठी थी। पर्स में सौ-सौ के दस नोट पड़े थे। मैंने सोचा उनके टुकड़े-टुकड़े कर खिड़की से बाहर फेंक दूँ और बाहर जाकर चलती ट्रेन के नीचे कट मरूँ। परन्तु अनु को मैंने जीवन में पहली बार इतने प्यार और स्नेह से देखा था। उसकी फ्राक कई जगह से फटी हुई थी। वह पाँव पेट में डाले सर्दी से ठिठुर रही थी। कई दिनों से घर में भात नहीं बना था। माँ सवेरे पूछ रही थी—"बेटी काजल, नौकरी का कुछ जुगाड़ हुआ !" मैंने जाकर अनू

को सोते हुए ही उठाकर सीने से चिपका लिया। मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। लगातार उसे पागलों की तरह चूमती जा रही थी। माँ जग गई। पूछा—"क्या है काजल ?"

"कुछ नहीं माँ। ऐसे ही। अनु को ठंड लग रही थी। मैंने उसे चद्दर उढ़ा दिया।"

"बड़ी शैतान है। चद्दर उढ़ाने पर पाँवों से फेंक देती है।" माँ बोली थी और फिर धीरे-धीरे खर्राटे भरने लगी। मैं अनु के बालों में अँगुलियाँ फिराते हुए उसका सिर अपनी जाँघों पर लिए रोती-सिसकती रात-भर बैठी रही। सवेरा होने वाला था। साहस करके उठी थी। हाथ-मुँह धोया। बाहर निकलकर लाल, गुलाबी रंगों में बंटे पूर्वाकाश को देखती रही और फिर एक दृढ़ आत्मविश्वास से जैसे मेरा दिल मेरे दिमाग में समा गया। जीना है तो सब कुछ झेलना होगा। परिवार को भूख और संत्रास से बचाना है तो अपने आपको बेचना कोई पाप नहीं। अस्तित्व की सुरक्षा के लिए दुनिया का यह क्रूर तमाशा देखना होगा। मैं बाजार जाने के लिए झोला और पर्स से सौ-सौ रुपये के नोट लेकर तड़के ही निकल पड़ी। बाजार में सौ रुपये का नोट मेरे हाथों में देखकर सब्जी वाले ने आँखों में शरारत-भरे हुए कहा था—"इसे भुनाना तो मुश्किल है दीदी ! ऐसे ही जो चाहो ले जाओ।"

गैरकानूनी ढँग से चावल बेचने वाली बुढ़िया ने मुँह टेढ़ा करते हुए कहा था—"ना बाबा ना। सवेरे-सवेरे सौ रुपये का नोट ! चावल रख जाओ। रुपया तुड़ाकर ले जाना। हुँह। सवेरे-सवेरे सौ रुपये का नोट दिखाने चली है। जैसे हमने रुपया देखा ही नहीं। कैसे तपाक से सामने फैला दिया।" मछली वाले ने मेरे झोले में पाँच सौ ग्राम मछली की जगह एक किलो डालकर बोला—"दीदी ! सौ रुपये का छुट्टा तो नहीं है। आप बाद में दे जाना। आज बहुत सवेरे बाजार करने चली आयीं। कहीं नौकरी लग गई क्या ? आपके पिताजी कल दो सौ ग्राम मछली ले गए हैं, बोल गए पैसा बाद में पहुंचा देंगे।"

मोदी की दुकान से मैंने दाल, चीनी, चाय, दूध, मसाले, साबुन खरीदे। जब सौ रुपये का नोट दिया तो उसकी आँखें मेरे चेहरे पर टिक

गई। आश्चर्य-भरे हाथ से नोट को लेकर कई बार उल्टा-पल्टा। फिर होंठों पर मन्द मुस्कान लिए मेरी ओर देखकर नोट को कैश-बाक्स में रख लिया। काउंटर के बीच से एक डायरी खोलते हुए कहा—"कुल तीन सौ चालीस रुपये बाकी हैं। तुम्हारे पिताजी सामान ले गए हैं। इतना बकाया रखकर दुकान भला कैसे चलाऊँ। तुम तो समझदार लड़की हो। पिताजी तो बस वादा करते रहते हैं। आज, कल, परसों।"

"कुल कितना हुआ?" मेरा मुँह इस अपमान से तमतमा गया था। उसने नोटबुक में हिसाब पढ़ते हुए कहा—"आज का काटकर तीन सौ बत्तीस रुपये।"

"मैं आज ही दे जाऊँगी। चिन्ता न करें।" मैं दुकान से चल पड़ी तो पीछे से उस मोदी की खिलखिलाहट-भरी हँसी सुनाई दी—"ये भी असली पिता की असली माल है। कहती है आज। चलो कल, परसों से आज कहना अच्छा है।"

"आह! वह कैसा क्रूर व्यंग्य था। कैसा दिन देखना पड़ा है। कैसे-कैसे लोगों के उपहास सहन करने पड़े हैं। मेरे हाथ में सामान से भरा झोला देखकर माँ विस्मय में पड़ गईं—"काजल! इतनी सारी खरीदारी कर ली। बेटी, बताया भी नहीं। नौकरी मिल गई क्या?"

"हाँ, माँ!" आँसुओं पर काबू पाते हुए मैंने कहा और रसोईघर की ओर तेजी से चली गई—"माँ, आज मैं ही खाना बनाऊँ?"

"ना बेटी रहने दे! मैं अभी नहाकर आती हूँ। ऑफिस भी करेगी, खाना भी बनाएगी। और मैं बेकार घर में खाली बैठी खाँसती रहूँगी। ना, तू रहने दे।" माँ बाथरूम की ओर चली गईं। मैंने देखा पिताजी अभी तक सोए हैं। अनू भी पेट में पाँव डाले अँग्रेजी का तीन बनी सोई है। मैंने अँगीठी जला दी। कुछ देर में ही वह सुलगने लगी। काला मटमैला धुआँ निकलकर आकाश की ओर बढ़ने लगा। मैं उस धुएँ को काफी देर तक देखती रही। मैंने चाय बनाई। लाकर पिताजी को उठाते हुए कप उनके हाथों में पकड़ा दिया। देखा, उनकी आँखों में अभी भी नींद थी। मुझे लगा कि वह रात में सोए नहीं। मेरे चेहरे की ओर देखकर बोले—"बेटी काजल! कल तू बहुत थक गई थी। पूछने का मौका ही नहीं मिला। कहीं

नौकरी मिली ?"

"हाँ पिताजी, मुझे नौकरी मिल गई है।" मैंने उनकी बात को बीच में काटते हुए कहा।

"अच्छा। कहाँ ? क्या काम मिला ?"

"एक मैडिकल स्टोर्स में।" मैं समझ नहीं पा रही थी कि क्या बोलूँ पिताजी से। बस यूँ ही मुँह से निकल गया।

"मैडिकल स्टोर्स में ? चलो अच्छा है।" वे चाय की चुस्की लेते हुए बोले—"पर बचकर रहना। आजकल मैडिकल कम्पनियाँ नकली दवाएँ बहुत बेच रही हैं।"

मैं कहना चाह रही थी—पिताजी, आदमी ही जब नकली हो गया है तो नकली दवाएँ। नकली मसाज। मालिश। नकली 'ब्यूटी सैलून।' नकली सुन्दर स्वास्थ्य केन्द्र। क्या फर्क पड़ता है, इस शताब्दी में आदमी के जीने या मरने में। असल, नकल होने में।

"कहाँ है यह स्टोर्स ? क्या नाम है ?" पिताजी ने उत्सुकतावश पूछ लिया।

"जी। बालीगंज में। न्यू सिटी स्टोर्स।" सरासर गलत। झूठ। मैं और आगे बात किए बिना ही 'किचन' की तरफ तेज कदमों से चल पड़ी। किचन में कुछ देर तक जड़ बनी घुटनों में मुँह छिपाए सिसकती बैठी रही। चाय पीने की तबियत नहीं हुई। मैंने कप में भरी चाय को केतली में डालते हुए अपने आपसे कहा—"ले आत्म-युद्ध कर काजल। अब शुरू हो गया जीवन का महाभारत। अभिमन्यु के लिए घेराबन्दी हो रही है। भला कैसे निकल पाएगी दुर्दिन की घेराबन्दी से ? इस भयानक चक्रव्यूह से।" पढ़ाई करते समय सोचा था डाक्टर बनूँगी। अच्छे नम्बरों के लिए रात-रात-भर पढ़ती रही। और आज मैं देह-व्यापार में संलग्न होने के लिए प्रस्तुत थी।

माँ तब तक नहा-धोकर आ गईं। उन्होंने मुझे प्रगाढ़ स्नेह से पुकारते हुए कहा—"बेटी काजल, क्या सोच रही है ?"

"कुछ नहीं माँ ! ऐसे ही। सोचा, तुम आओगी तो एक साथ चाय पिऊँगी।" फिर झूठ। शायद अब झूठ ही मुझे जीवन-भर बोलना पड़ेगा।

झूठ ही दिनचर्या का एक प्रमुख अंग बन जायगा।

"बेटी, तुम्हारे पिता बड़े खुश हैं कि तुम्हें नौकरी मिल गई।"

"हाँ माँ।" कहकर मैं अपने अन्दर बिखर गई थी। एक वासना पिपासु राक्षस मुझे नोच-खसोट रहा था और मैं परकटे पक्षी की तरह छटपटा रही थी। माँ फिर बोली थीं—"कह रहे थे कि काजल बड़ी होनहार है। मैंने भी कह दिया —"काजल मेरी बेटी नहीं, बेटा है। नौकरी मिलते ही सवेरे-सवेरे इतनी सारी चीजें खरीद लाई। बेटा होता तो अपने गुमान में भरा सोता ही रहता। नौ बजे तक सोया पड़ा रहता। जैसे नौकरी नहीं कर रहा, माँ-बाप पर उपकार कर रहा है। आज तो मैं बेटी को मछली, पुलाव और हलुआ अपने हाथ से बनाकर खिलाऊँगी।"

माँ के चेहरे पर उमड़ते आनन्द की रेखाएँ देखकर मेरे आँसू आँखों के पिछले दरवाजे से कूदकर बाहर भाग खड़े हुए थे। मन से निश्चय किया था —पहले मेरे माता-पिता और नन्ही-सी बहन है, फिर मैं और मेरा शरीर। मेरी अस्मिता। परन्तु आप तो देख ही रहे हैं अमित बाबू! मेरा शरीर किस तरह लुट गया। केवल मैं बची हूँ, नाममात्र की काजल।" काजल की आँखों से आँसू बरस पड़े।

बार में शोर-शराबा बढ़ गया। मैंने घड़ी देखी। ग्यारह बजकर चालीस मिनट। कुछ ही देर बाद 'जीरो आवर' (शून्य-काल) घोषित होते ही एक धमाका होगा। वाद्य-यंत्रों के विशेष धुन पर 'शीशा-फर्श' पर 'कैबरे' नर्तकी के पाँव थिरकने लगेंगे। नर्तकी अपने एक-एक वस्त्र उतारती हुई हम जैसे दुःशासनों की सभा में आर्त्तनाद नहीं करेगी। सहायता के लिए कृष्ण को नहीं पुकारेगी। अपने स्वजनों-आत्मीयों को गुहार नहीं लगाएगी और न

ही उसके भाई, पति, ससुर, मामा अपने सिर झुकाए अपमान, लज्जा और आत्मग्लानि के बोझ से दबे हुए कनखियों से उस दुःशासन-लीला में नग्न होते नारी-शरीर देखने का साहस जुटा पाएँगे। यहाँ तो खुले आम वस्त्रावतरण का कार्य स्वयं नारी करेगी। हाल में नीली-पीली रोशनी के पंख नाचेंगे। क्षण-भर का सांकेतिक अन्धकार होगा। फिर रंग-बिरंगी बिजली के धूमछाहीं आलोक में नर्तकी का अन्तिम वस्त्र भी उतर जाएगा। तालियों के बीच उत्तेजना के पाँव थिरकने लगेंगे। कई सौ वाट की रंग-बिरंगी रोशनी फूट पड़ेगी दीवारों, छतों से। चेहरों को बदशक्ल करने के लिए, उनकी भाव-भंगिमाओं, उनके थिरकते कदमों, विचित्र हावभावों को रूपायित करने के लिए। एक ताल पर तालियाँ बजेंगी। स्त्री-पुरुष फ्लोर पर नाचने लगेंगे। 'जीरो आवर' यानी 'शून्य-काल' अपना अन्तिम जाम आने वाले नव-वर्ष के नाम 'चियर्स' कहकर खाली कर देगा। उसी के साथ खाली हो जाएगी यह 'बार'। बहकते कदमों के साथ स्त्री-पुरुष अपने-अपने घरों में लौट जायेंगे नये वर्ष में हर्षोल्लास के साथ पुनः नये वर्ष जीने, हंसने, खेलने। पाने-खोने और पीने-पिलाने···। इसी तरह विदूषक नाचता रहेगा, गाता रहेगा, शहर-दर-शहर, फुटपाथ-दर-फुटपाथ। मैंने घड़ी देखी। साढ़े ग्यारह बज रहे थे। सिर्फ आधा घंटा बाकी हैं जीरो आवर होने में।

मैंने अमिताभ से पूछा—"तुम हल्का हो लो। तुम्हारा दिमाग भारी हो गया है। और लोगे एक पैग ?"

उसने कहा—"हाँ लूंगा। काफी दुःख दिया काजल की वेदना ने। आज मैं उसके लिए, उसकी आत्मा की शान्ति के लिए पीना चाहता हूँ।"

"मैं तुम्हारे लिए मंगाता हूँ।" मेरे कहने पर उसने मना कर दिया।

"नहीं ! जब तुमने मेरा आफर ठुकरा दिया, तब मैं क्यों कृतज्ञता लूँ ?"

"इसमें जरा भी कृतज्ञता नहीं। कहोगे तभी मँगाऊँगा।"

"ना, मैंने सोच लिया है। आज से कभी भी किसी का दिया हुआ नहीं खाऊँगा या पिऊंगा। किसी को पीने के लिए कहूँगा नहीं। शायद बार में जाना भी छोड़ दूं।"

"तुम भावुक हो रहे हो। इस दुनिया में आदमी अकेला नहीं जी सकता। सबको किसी-न-किसी की जरूरत पड़ती ही है। रोजमर्रा की जिन्दगी में अकेले रहने की अहमियत नहीं चल सकती। यात्रा, 'रेस्ट्राँ', 'बार' में मर्यादित सभ्यता या कठोर आत्मानुशासन नहीं चलता।"

"सब जगह चल सकता है। यह आदमी-आदमी पर निर्भर करता है। जैसे तुम्हारे और मेरे सोचने, लिखने, रहन-सहन में अन्तर है।"

"हो सकता है कोई अन्तर हो, पर ऐसा कुछ खास नहीं। एक जैसा ही है। बस उन्नीस या बीस। तुम समाचारों की कहानी बनाते हो और मैं आदमी के जीवन से कहानी। दोनों का मकसद एक है।"

"देखो! यदि अन्तर नहीं है तो क्या तुम काजल जैसी लड़की से शादी कर सकते थे?" यह मेरे ऊपर उसकी चोट थी। मैं तिलमिला उठा। जैसे लगा, काफी देर से वह इसी वार को मेरे ऊपर आजमाने के लिए प्रस्तुत कर रहा था अपने को।

मैंने उससे कहा—"काजल जैसी लड़की से शादी करने के लिए समाजसुधारकों की पंक्ति में खड़ा होने की आवश्यकता नहीं। यह तो कर्त्तव्यबोध की बात है।"

"मैं इसी कर्त्तव्यबोध की बात तुम्हें याद करा रहा हूं। समाज और देश के बारे में अच्छी-अच्छी बातें लिखना। चिन्तन के ऊपर चित्र-विचित्र फिलसफों की खोल लपेटना अलग बात है। वास्तविक जीवन से साक्षात्कार करना बिल्कुल भिन्न स्तर का मानदंड है। तुम लेखक हो, उपन्यासकार हो। तुम अपनी कलम से जो चाहो लिख सकते हो। तुम्हें पूरी छूट है। पूरी स्वतन्त्रता है। कम-से-कम फिलहाल। परन्तु जीवन की सच्चाई को आत्मसात् करने लायक क्षमता तुम जैसे बुद्धिवादियों की चिन्तन की झोली में नहीं।"

उसने फिर मुझ पर करारा आघात किया। वह समझ रहा था कि अभी भी वह मुझ पर हावी होता जा रहा है।

मैंने कहा—"समाज का उद्धार करना, समाज-सुधारकों जैसा व्यवहार करना, नेतागिरी करना ही यदि लेखकों, बुद्धिजीवियों का काम होता तो शायद हम पुस्तकें न लिखकर आदर्श वाक्यों का पोस्टर अपने दिमाग के

चारों और लपेटे, लोक कल्याण का झंडा लिए सड़कों पर घूमते और सत्ता के हाथों अपमानित होकर किसी जेल की अँधेरी कोठरी में सड़ते रहते अथवा अपमान, आत्मग्लानि, अपकीर्ति के अँधेरे जंगल में भटकते होते। लेखक की सबसे बड़ी पूँजी उसकी स्वतन्त्रता है। आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, चिन्तन की स्वतन्त्रता। मैं तभी कोई कहानी लिखता हूँ जब उस कहानी के साथ पूरी तरह आत्म-सामंजस्य स्थापित कर लेता हूँ। समाचारपत्रों का कालम भरना दूसरी बात है।'' मैंने उस पर चोट की। वह तिलमिलाया नहीं। बोला—''तुम लिखो घिसी-पिटी कहानियाँ और जाने दो समाज को, देश को रसातल की ओर। ओफ! विघटन कहाँ नहीं है?'' उसने वेटर को बुलाकर कहा—''दो डबल डायमण्ड और कुछ खाने को लाओ।'' वेटर मुस्करा उठा—''साब क्या खायेंगे? मीनू लाऊँ?''

''फिश फिंगर मिलेगी?''

''जी देखता हूँ।'' कहकर वेटर जाने लगा तो उसने कहा—साहब का आर्डर भी ले लो।''

''नहीं मैं कुछ नहीं खाऊँगा। दो बोतल बीयर पहले ही पी चुका हूँ। मैं पीता होटल में और खाता घर पर हूँ।''

''सिर्फ दो। दो से क्या होता है? आज 'न्यू इयर्स इव' है। संभ्रान्त लोगों की शाम। एक और लो। घर पर तो मैं भी खाता हूँ। पुरुष का बहुस्त्रीगामी स्वभाव दीर्घकाल से चला आ रहा है। फिर तुम इस तरह सिर्फ घर के खाने पर क्यों अड़े हुए हो?'' उसने कटाक्ष किया।

''यह अपनी-अपनी पसन्द है।''

''अरे लो तो सही। मेरी बात का शायद बुरा मान गए। प्लीज माफ कर देना।''

''नहीं, ऐसी बात नहीं। मैं तुमसे जरा भी नाराज नहीं।''

''तब लो। कुछ देर और बैठते हैं। क्या बजा है?''

''ग्यारह बजकर पैंतालिस मिनट।''

''अभी पन्द्रह मिनट देर है नया साल जन्मने में। यह प्रसव-पीड़ा का समय है। मर्मान्तक पीड़ा का। टाइम-सफरिंग का। मानवीय-दुर्दशा का।

समय की पीड़ा के लिए ही एक 'बीयर' ले लो।"

उसकी बात टाल नहीं सका। मैंने वेटर को बुलाकर कहा—"मेरे लिए एक बीयर और लाना। और वेजीटेबल हैमबर्जर।"

वेटर चला गया तो वह मेरी ओर झुक आया। किंचित् धीमे स्वर में बोला—"तुम्हारे पीछे जो लड़की बैठी है न, वह धन्धा करती है। आज किस तरह से नई वधू बनी अपने नये कस्टमर के साथ यहाँ बैठी है।"

"तुम्हें कोई एतराज है ? तुम उसे कैसे जानते हो कि धन्धा करती है?" इस पर उसने कहा—"मैंने उसे कई बार अलग-अलग पुरुषों के साथ देखा है। पार्क स्ट्रीट पर एक दिन मैं जा रहा था तो वह काफी दूर तक मेरे साथ चलती रही। मुस्कराती रही। आँखें मारती रही। परन्तु मुझे मोह नहीं सकी। तेजी से फ्री स्कूल स्ट्रीट की ओर मुड़ गई। मैं ऐसे क्षणों को नापसन्द करता हूँ। तुम प्यारे मित्र कभी 'खलासी टोला' जरूर जाओ। जी भर कर सस्ती दारू पियो यानी 'ठर्रा' और फिर किसी सस्ती से सस्ती जगह, किसी कुत्सित, काली, नवयौवना के साथ रात बिताओ तो देखोगे जीवन में तुम्हें मानवीय संदर्भों का बहुत बड़ा आयाम मिलेगा। आज के आर्थिक संकट और मानवीय जीवन की त्रासद स्थितियों के बहुत सारे बिन्दु मिलेंगे। और उन बिन्दुओं को फैलाकर तुम 'वार एण्ड पीस', युद्ध और शान्ति की तरह कोई मौलिक कृति की रचना कर सकते हो। टाल्सटाय ने तो युद्ध की विभीषिका को चित्रित किया। तुम आधुनिक समाज के संत्रास और व्यक्ति के विघटन को अच्छे-से चित्रित कर सकते हो।" मैंने उससे कहा—

"तुम जीवन के जिन आयामों को लेखन या चिन्तन का दायरा मानते हो। मैं नहीं मानता। मुझे जो कुछ अनुप्रेरित, प्रभावित नहीं करता उसे मैं लिख नहीं सकता। मौलिक लेखन और पत्रकारिता में अन्तर है।"

"तुम छायावादी तो नहीं हो ?" उसने पुनः मुझ पर आघात किया।

"मुझे नहीं मालूम। मैं वादों में कम विश्वास करता हूँ। वाद आदमी को कूप-मंडूप बना देते हैं। जैसे तुम। सिर्फ एक ही दिशा में सोचते हो।"

"हाँ, तुम यही कहना चाहते हो, दारू और वर्ग-चेतना से एक साथ जुड़ने की बात।" वह चुप हो गया। पैकेट खोलकर एक सिगरेट जलाया। लम्बा कश लिया। धुएँ के बीच मैंने उसका चेहरा ध्यान से देखा। उसके चेहरे पर चिन्ता की अनगिनत रेखाएँ खिच गईं। उसने गिलास उठाकर 'सिप' किया। फिर धुएँ के गोल छल्ले छोड़कर अपने और मेरे बीच धुएँ की दीवार खड़ी कर दी। मैंने मन-ही-मन सोचा, बौद्धिक युद्ध में धुएँ की दीवार रक्षा-कवच या प्रथम पंक्ति का काम करती है। धुएँ के आर-पार हम अपने विचारों की सेनाएँ नये सिरे से सुसज्जित कर रहे थे। नये मोर्चे गढ़ने के लिए। एक-दूसरे को पराजित करने के लिए नये युद्ध-व्यूह की रचना कर रहे थे। उसने कहा—"देखो बन्धु! आज का आदमी सचमुच अपने समय के पीछे घिसट-घिसटकर चलता हुआ असहाय प्राणी लगता है। मैं तुमसे जिस भी विषय पर गम्भीरता से बात करना चाहता हूँ, काजल का असहाय चेहरा बीच में आ जाता है। मैं जितना ही काजल को भूलने की कोशिश करता हूँ, उतना ही वह मेरे दिल और दिमाग पर अपना आसन बिछाए बैठी रहती है। यानी इस घटना के दो महीने बाद भी। मेरे दिल और दिमाग में उसकी कहानी चलती रहती है।"

मैंने कहा—"तुम पहले कह रहे थे कि काजल अब इस दुनिया में नहीं है।"

"हाँ। वह मर चुकी है। बल्कि वह मर कर अमर हो चुकी है। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ। क्योंकि मौजूदा हालातों में आदमी के अस्तित्व-संकट से निस्तार पा लेना सुखद स्थिति है।"

"उसका पति कहाँ है? और अनुराधा?"—मेरे मन में और भी बहुत कुछ जानने की उत्सुकता उफान भर रही थी। उसने सिगरेट का एक गहरा कश लिया। हताश स्वर में बोला—"बड़ी मर्मान्तक कहानी है। मुझ जैसा व्यक्ति जो व्यक्ति-चेतना, वर्ग-चेतना, लिबरेशन की बातें करता और लिखता रहता है, वह कभी-कभी सामाजिक मान्यताओं के बीच किस प्रकार असहाय हो जाता है। किस तरह वैचारिक नपुंसकता से परास्त हो उठता है। मैंने काजल का जीवन देखा है। उसकी बातें सुनी हैं। मेरे सामने वह उस दिन जिस प्रकार अपने जीवन की पर्तें-

दर-पर्तें उघाड़ कर अपना असली रूप प्रस्तुत कर रही थी, मैं सोच नहीं पा रहा था कि वह कैसे मेरे सामने 'कन्फेशन' कर रही है। अपने जीवन में भोगे गए निष्ठुर आततायी क्षणों के बारे में बता रही थी। मुझे अपना समझकर, मित्र मानकर वह सब कुछ आप बीती कह रही थी। इसलिए नहीं कि मैं उसे वैतरणी पार कराने का गुरुमंत्र सिखा दूंगा बल्कि इसलिए कि उसे आन्तरिक राहत मिल रही थी या हो सकता है मेरी समवेदना की स्वीकृति चाहती रही हो, अनुराधा के लिए। मैंने उससे पूछा—"काजल, तुमने जीवन में बहुत-सी यातनाएँ सही हैं। माँ, बाप, बहन के लिए अपने आपको समझौतों की बलि-वेदी पर चढ़ा दिया। ऐसा करते हुए अपने जीवन के प्रति इतनी उदासीन क्यों हो गई?" वह बोली थी—"शायद यही नियति को स्वीकार था। फिर मुझ जैसी नगर वधू की निजी जिन्दगी क्या हो सकती है भला?"

"तुम उस 'मसाज' वाले काण्ड के बाद किसी और जगह नौकरी खोज लेतीं। कोई छोटा-मोटा काम।" मेरे सुझाव देने पर व्यंग्य मुस्कान में उसके ओंठ फैल गए—"नौकरी! काम! कहना आसान है पर खोजना बहुत मुश्किल। इस काण्ड के बाद पूरे महीने-भर तक दफ्तरों, इम्प्लाय-मेंट एक्सचेन्ज में काम के लिए मारी-मारी फिरती रही। कहीं भी कुछ नहीं हाथ लगा। एक हजार रुपये पास में थे, सो बाजार की उधारी में चले गए। मैं रोज सवेरे 9 बजे घर से निकल पड़ती, 'मेडिकल स्टोर्स' जाने का बहाना बनाकर और शाम 6 बजे घर वापस पहुँचती तो माँ का बीमार चेहरा मेरी आँखों में टँग जाता। मुझे उस समय चिन्ता और परेशानी हुई जब एक दिन पिताजी ने मुझसे अचानक पूछ लिया—"काजल बेटी, आज तो पहली तारीख है। तुझे तनख्वाह मिली होगी। दे तो बाजार कर दूँ। कई दिनों से मछली खाने की बड़ी इच्छा हो रही है। राशन भी लेना है।" उस दिन दो तारीख थी। पिताजी की चिन्तित मुद्रा देखकर मैं घबरा उठी। मन में लगा था शायद हर मध्यवित्त पिता को पहली तारीख पर अपनी कमाऊ सन्तान से ऐसी ही उम्मीद बँधी रहती है। मैं गहरे से उस दिन पिताजी की आँखों में असहाय-बोध देखकर चौंक गई थी। असमंजस में ही कहा मैंने, "पिताजी, वे लोग प्रत्येक पाँच तारीख को

महीना देते हैं। आज तो सिर्फ दो ही है।" यह वाक्य बोलने में मुझे जो कष्ट हुआ था, जो मानसिक यंत्रणा हुई थी उसे मैं आपसे कैसे बताऊँ। अन्दर से जैसे मैं परास्त होकर खण्ड-खण्ड टूट गई थी। मुझे यह कहकर उस क्षण तो मुक्ति मिल गई, लेकिन यह सोचकर बेहद घबरा उठी कि पाँच तारीख को तनख्वाह के रुपये कहाँ से लाऊँगी भला ? जीवन के गलत मोड़ से भटक जाने के बाद जीवन-पर्यन्त वह भटकाव बना रहता है। तीन तारीख थी। हाँ अब भी मुझे याद है। मैं दोबारा उसी रास्ते पर चलने के लिए निकल पड़ी थी, जिस पर न जाने का निर्णय महीने-भर पहले किया था। क्योंकि पाँच तारीख को पिताजी के हाथों में तनख्वाह के रुपये रखने की चिन्ता ने कई रात मुझे सोने नहीं दिया। फिर पहुँच गई, 'न्यू ब्यूटी सैलून' की आत्महन्ता सीढ़ियों पर। सैलून में उस वक्त कोई खास भीड़-भाड़ नहीं थी। शोभन अपने कमरे में बैठा कोई पत्रिका पढ़ रहा था। मैंने उसे नमस्कार किया। मेरी आवाज सुनते ही वह खुश हो उठा। "अरे काजल, तुम फिर आई नहीं। कहाँ चली गई ? अपने घर का पता भी नहीं दिया ! अंजु से मैंने बहुत पूछा पर वह भी सिड़ी लड़की है। बताया नहीं।" सिर नीचा किए हुए उसके सामने की मेज पर रंग-बिरंगी पत्रिकाओं में लड़कियों के नंगे चित्र देखते हुए, उनके बीच अपने को रखते हुए एक और झूठ बोली थी—"बीमार हो गई थी।"

"खैर, कोई बात नहीं। अब तो ठीक हो ?" कहकर कमरे से बाहर निकल गया। कुछ ही देरी में लौटकर मुझे एक लिफाफा थमाते हुए बोला—"यह रही तुम्हारी तनख्वाह पिछले महीने की। पूरे पाँच सौ।"

"जी, मैंने तो एक ही दिन काम किया था।" बोलते-बोलते मेरी जबान लड़खड़ा गई।

"ओह ! समझा। देखो काम तो एक ही दिन किया था, पर हमारी कम्पनी का नियम है, यदि कोई काम के बीच में बीमार हो जाए तो पूरी तनख्वाह मिलेगी। खैर, क्या लोगी ठंडा या गरम ?"

"जी, कुछ भी नहीं। धन्यवाद !" मैंने कृतज्ञतावश शोभन से कहा।

"डोन्ट बी शाई। शरमाओ मत।" फिर उसने घण्टी बजाई। अन्दर एक लड़की आई तो बोला—"डिसोजा ! तुम काजल से मिली हो न ?

अच्छा तो मिल चुकी हो। इनके लिए एक 'औरेन्ज' लाओ।" मैं ना नहीं कर सकी। हाथ में लिफाफा लिए हुए सोच रही थी कि पाँच तारीख को मैं अब पिताजी के सामने लज्जित नहीं अनुभव करूँगी।

उस दिन शोभन का व्यवहार मुझे बिल्कुल बदला हुआ लगा। सभ्य और आत्मीय। मैंने उससे सच कह डाला था—"मैं तो काम पर आई नहीं। आप मुझे तनख्वाह किसलिए दे रहे हैं? बीमारी तो एक बहाना था। असल में मैं इस काम के लायक नहीं। एक महीने से मैं यही सोच रही थी कि आप से साफ-साफ कह दूँगी—कोई दूसरा काम दे दें।"

शोभन कुछ सोचते हुए बोला—"दूसरा काम तो मेरे पास नहीं है। बस यही 'ब्यूटी पारलर' है। तुम शायद जानती नहीं कि मेरे पिता करोड़पति हैं। कई मिलें, कारखाने हैं। पर मैं उनसे अलग रहता हूँ। यह पारलर सब तरफ से निराश होकर मैंने एक दोस्त के साथ खोला है। पहले कई धन्धे कर चुका हूँ। सभी में काफी नुकसान उठाया। पर इस धन्धे में जरा भी नुकसान नहीं। वैसे काम कोई भी बुरा नहीं होता।" वह मैगजीन पढ़ने में व्यस्त हो गया तो मैंने शोभन से कहा—"जी, तो मैं जाऊँ?"

"हाँ, हाँ, इसमें पूछने की क्या बात है? हमारे स्टाफ को पूरी छूट है। बीमारी में कोई काम नहीं और पूरी तनख्वाह। पर याद रखना, सच की बीमारी की कोई कीमत नहीं।" मैं देख रही थी, जिस ढंग से शोभन ने मुझसे अन्तिम वाक्य कहा था, उससे लगा था कि मेरी बीमारी का बहाना जानकर भी वह मुझ पर जरूरत से ज्यादा दयालु हो रहा है। कमरे से बाहर निकली तो सैलून में काम करने वाली अन्य लड़कियाँ मेरी बीमारी के बारे में पूछने लगीं। उनमें से कुछ का नाम मुझे अब भी याद है। सिरीन आइजक, नेली डिसोजा, रीता कपूर, सन्ध्या गांगुली, सिरीन हरचन्दानी जो सब में सुन्दर और स्मार्ट थी। उस दिन उसी ने मुझसे कहा था—"काजल, तुम दो मिनट ठहरो। मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। मेरा काम समाप्त हो गया है। तुम्हारे साथ कुछ खास बातें करनी हैं।"

मैं कुछ देर तक वहाँ लड़कियों से बातचीत करती रही, तभी सिरीन ने अन्दर से आकर कहा—"चलो!" सभी लड़कियाँ साश्चर्य हमारी ओर

देखने लगीं। हम दोनों सैलून से निकलकर पार्क स्ट्रीट पर आ गए। उसने कहा--"कहाँ चलें? कहीं चाय पिएँगे और ढेर सारी बातें करेंगे।"

मैंने कहा—"मुझे तो पार्क स्ट्रीट के होटलों के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं।" इस पर उसने कहा—"तुम पार्क स्ट्रीट कभी आई गई नहीं। आने-जाने लगोगी तो सब कुछ समझ जाओगी। इन होटलों में क्या कुछ होता है। अच्छा चलो 'फ्लूरी' में बैठते हैं।" 'फ्लूरी' में कोने की एक मेज पर आमने-सामने बैठ गई। उस दिन सिरीन ने मुझे उस 'न्यू ब्यूटी सैलून' के बारे में सब कुछ बता दिया। शोभन वहाँ मैनेजर है और जिस आदमी को लड़कियों से 'मालिश' कराने की आदत है, वही उसका असली मालिक है। शहर का रईस आदमी। कई कम्पनियाँ हैं। एडवरटाइजिंग एजेन्सी भी है। 'न्यू एडवरटाइजिंग एजेन्सी' का चौरंगी में आफिस है। यहाँ से थोड़ी ही दूर। यहाँ से काम समाप्त करने के बाद मैं मार्डलिंग का काम भी करती हूँ। बहुत अच्छा पैसा मिलता है। एक पोज के पाँच सौ से लेकर एक हजार रुपये तक। बस जरा-सा फैशन, बनाव, शृंगार, साज करना पड़ता है, कुछ भाव-भंगिमाएँ, कुछ लोगों के मन मचलने लायक मुद्राएँ। तुम चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो। मैं तुम्हें पसन्द करती हूँ क्योंकि तुम एक भली और जरूरतमन्द लड़की हो। मैं भी तुम्हारी ही तरह गरीब परिवार की हूँ। मेरे पिता बचपन में ही गुजर गए। बूढ़ी माँ हैं। आँखों से कुछ दिखाई नहीं देता। दो छोटे भाई हैं। एक 16 तथा दूसरा 12 साल का। पढ़ रहे हैं। मझला दसवें में और छोटा सातवें में। मैं बड़ी हूँ। सीनियर कैम्ब्रिज पढ़ने के बाद एक फर्म में स्टेनो का काम मिला था। वेतन कम और काम अधिक। ऊपर से मालिक की वासना का शिकार होना पड़ता था। दिन-भर मुझे बेमतलल चैम्बर में बुलाता। तंग करता। परेशान होकर मैंने वह नौकरी छोड़ दी। आखिर पता नहीं कहाँ से कैसे किस्मत ने इस सैलून में लाकर खड़ी कर दिया। सच प्यारी बहन! भूख की आग बड़ी भयानक होती है। अच्छा मैं तुम्हें बोर करना नहीं चाहती। तुम मेरे साथ उस कम्पनी में चलना। सभी अच्छे लोग हैं। कम-से-कम यहाँ जैसे घिनौने मलिन-मच्छ शरीर पर तो नहीं रेंगने लगते। इस शहर में 'ब्यूटी पारलर' 'मसाज', 'योगासन-केन्द्र' और न जाने कितने ऐसे ही धन्धे हैं। औरत

को नंगा कर उसकी कमाई से ऐश करने वाले बहुत हैं।"

"कब ले चलोगी ?"—मैंने बीच में उसे टोकते हुए कहा।

"लो, चाय पी लो। मैं रोज इसी समय वहाँ जाया करती हूँ। तुम भी यहीं से चली चलना। और देखो, दूसरी लड़कियों को बिल्कुल मत बताना।" फ्लूरी से निकलकर सिरीन के साथ 'न्यू एडवरटाइजिंग कम्पनी' पहुँची तो शाम के चार बज रहे थे। मेरा परिचय सिरीन ने मैनेजर, मिस्टर संदीप चोपड़ा से कराया तो वह कुछ देर तक ध्यानपूर्वक देखता रहा, फिर सिगार को सुलगाते हुए अन्यमनस्क भाव से कहा—"चलो स्टुडियो में। 'फिगर' तो ठीक है। देखो फोटो कैसे आते हैं !"

मैंने उस दिन अनुभव किया कि नारी के शरीर का किस तरह उपयोग किया जाता है। पुरुष की काम-पिपासा के लिए, विज्ञापन में अखबारी दुनिया में, जहाज, मोटरकार, साबुन, तेल, रेडियो, टी०वी०, ब्लेड, साड़ी, पेन्ट, कमीज, चटनी, अचार से लेकर जूते, चप्पल तक के विज्ञापन में नारी-शरीर का नाना रूपों में अनगिनत अशोभनीय भाव-भंगिमाओं, पोजों में इस्तेमाल किया जाता है। पश्चिमी औरतें व्यर्थ में औरतों के 'लिबरेशन' का ढिंढोरा पीटती हैं। इस शताब्दी में भी औरतों का उपयोग उपभोक्ता की आवश्यक वस्तु के रूप में किया जा रहा है। मैं रुपयों के लिए जरूरतमन्द थी। जिस भी पोज के लिए कहा गया, मैंने दिया। उस दिन मैनेजर, मिस्टर चोपड़ा ने खुश होते हुए मुझे शाबाशी दी। सिरीन को धन्यवाद दिया कि ऐसी 'फ्री एण्ड फ्रैंक' लड़की को लाई। थोड़ी ही देर में फोटोग्राफ की कॉपी आ गई तो उसने खुशी में उछलते हुए कहा—"वाह ! ब्यूटीफुल। अति सुन्दर। देखो सिरीन, क्या बढ़िया पोज है।" फिर अपने एकाउन्टेन्ट को बुलाकर एक कागज पर कुछ नोट कर उसके हाथ में थमाते हुए मिस्टर चोपड़ा ने कहा—"जल्दी। तुरन्त। यह कैश। नो चेक।" फिर उन्होंने मेरे सामने उन सभी फोटोग्राफ को रख दिया। "देखो, तुम्हारी ही तस्वीरें हैं न ?" मैं अपने ही फोटोग्राफ देखकर आश्चर्यचकित हो रही थी। क्या मैं सचमुच इतनी सुन्दर हूँ ? आखिर मैंने इस तरह के पोज कैसे दे दिए ? मुझे मिस्टर चोपड़ा ने उन आठ पोजों के कुल पन्द्रह सौ रुपए दिए। इतने रुपए लेकर जब मैं चली तो खुशी का

ठिकाना नहीं था। खुशी इस बात की कि इन मर्दों की दुनिया में मुझ जैसी गरीब लड़की का भी कोई अस्तित्व है। बस, उस दिन से मैं माडलिंग करने लगी। परन्तु यह ज्यादा दिन तक नहीं चल पाया। मिस्टर चोपड़ा ने एक दिन मेरे शरीर से खेलना चाहा। मैं एकदम से तड़प उठी। उसके गाल पर तड़ातड़ कई तमाचे जड़ दिए और स्टुडियो की हर चीज तोड़कर सारे पोज को फाड़कर हवा में उछालते हुए चली आई। परन्तु फिर वही बेकारी। फाकामस्ती। दो ढाई हजार रुपये देखते-ही-देखते समाप्त हो चुके थे। पिताजी की हर महीने की पाँचवीं तारीख पर तनख्वाह की फर्माइश मुझे दिमागी तनाव और आन्तरिक संत्रास से भर देती। माँ पहले से अधिक बीमार रहने लगीं। धीरे-धीरे उनकी हालत अत्यन्त खराब होती गई। घर में दवा के लिए, डाक्टर को फीस देने के लिए पैसे नहीं। हार मानकर मैं फिर सड़कों पर आ गई। उस दिन आपसे 15 रुपए मैंने ऐंठ लिए थे ना, याद है? माँ के लिए दवा खरीदनी थी। आप घर आए थे, बस उसी दिन के पन्द्रह दिन के बाद अचानक पिताजी गायब हो गए। माँ भी एक महीने बाद ही चल बसीं। मैं और अनू अनाथ हो गए। दुनिया में जितने भी दुःख हैं ईश्वर ने सब मेरी ही झोली में डाल दिए। मैं जीवन से हार-थक गई थी। फिर आत्महत्या करने का निश्चय किया। पर बीच में आ गईं अनू की भोली, निरीह उदास आँखें। गरीबी की तेज धूप से कुम्हलाये हुए उसके चेहरे पर अंकित दुःख की करुण-कातर छाया।

मैं अनू के लिए फिर से जी उठी थी जैसे, देह-व्यापार करने के लिए। और उस दिन नियंत्रित कर लिया आत्मघात के रास्ते पर मन के भागते घोड़े को। एक शाम मेट्रो के सामने फुटपाथ पर खड़ी थी। एक आदमी कार पर आया। मुझे देखकर हार्न बजाया। कार फुटपाथ के एक किनारे रोक दी। मैंने देखा। जाना-पहचाना चेहरा लगा और दिमाग को जैसे किसी ने बिजली के कोड़े से मारा हो। मैं आकर कार में उसकी बगल में आगे की सीट पर बैठ गई। यह वही महापुरुष थे जिन्होंने 'न्यू ब्यूटी सैलून' में मेरे कोमल फूलों को तोड़ा-मसला था। 'न्यू ब्यूटी सैलून' के मालिक। कलकत्ता के रईसों में एक। जीवन में मेरी इज्जत से इस आदमी

के सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति खेल नही सका। मैंने किसी को अवसर ही नहीं दिया। पर इस आदमी के पशुत्व के आगे मैं अपना सर्वस्व खो चुकी थी। मैं इस शहर की सड़कों-फुटपाथों, कैबिनों, काम-लोलुप पुरुषों की गिद्ध आँखों और उनके तौर-तरीकों से घृणा करने लगी थी। अमित बाबू! आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि वही व्यक्ति जिसने 'न्यू ब्यूटी सैलून' में मुझे अपनी हवस का शिकार बनाया था और जीवन में पहली बार मैंने किसी पर-पुरुष को अपनी मान-मर्यादा सौंपी थी, वही मिस्टर अग्रवाल आज मेरे पति हैं। शादी के बाद मैंने अनू को भी अपने ही पास रख लिया। लेकिन 'न्यू अलीपुर' में बनी उनकी विशाल भव्य कोठी में आकर काला बाजारी के धन्धे में फँसकर मैं फिर अन्दर से अशान्त होकर तड़फड़ाने लगी। शायद उन्होंने मुझसे शादी इसीलिए की थी कि मुझे अपने धन्धे से जोड़ सकें। एक सुन्दर लड़की द्वारा उनकी दो जरूरतें पूरी हुईं। एक तो उनकी वासना और दूसरी उनका धन्धा। मैंने जान-बूझकर जीवन का यह कड़ुवा विष भी पी लिया। आदमी जीवन की बाजी एक बार हार जाता है तो उसका साहस कमजोर पड़ने लगता है। और फिर कमजोर मन-मस्तिष्क द्वारा वह दाँव-पर-दाँव हारता चला जाता है।"

काजल को अपनी आप बीती बताते हुए कष्ट हो रहा था। अनुराधा मेरे पीछे आकर खड़ी हो गई तो काजल ने विषय बदलते हुए कहा—"क्यों री अनू! नाश्ता तैयार है? अमित बाबू भूखे होंगे। मैं तो बातों-बातों में भूल ही गई।"

"हाँ दीदी, नाश्ता तैयार है, परन्तु इन पत्रकार महोदय को अभी तैयार होने में घण्टों लगेंगे। दो-चार बार दाढ़ी बनाएँगे। नहाएँगे। दीदी, तुम अभी तक बातों में ही उलझी रहीं। देखो न, क्या टाइम हो गया। आठ बज रहे हैं। अब तुरन्त उठो और नाश्ता कर लो।" अनुराधा ने जिस तरह हुक्म चलाते हुए कहा, उससे मुझे और काजल को हँसी आ गई। मैंने उठते हुए कहा—"हुक्म चलाने में तो तुम कुशल हो। ऐसी लड़की से भगवान बचाए।"

"ऊँ, दीदी देखो! अमित बाबू कैसे मुझे 'हूट' कर रहे हैं।"

"अरे नहीं री, वह तो तेरे 'टीचर' की तरह हैं।"

"दीदी ! मुझे दो चीजों से सख्त नफरत है। एक तो तरबूज और दूसरा 'टीचर'।"

काजल खिलखिलाकर हँस पड़ी। मैं भी हँसने लगा।

मैंने अनुराधा से पूछा—"टीचर और तरबूज में क्या समानता है भला ?" इस पर अनुराधा ने कहा—"तरबूज काटो तो तीन चौथाई भाग फेंकना पड़ता है। फिर जो बचा उसका रस निकालो तो मुश्किल से एक गिलास ही निकलता है। इसी तरह 'टीचर' लोग ढेर सारी बातें बोलते जाते हैं पर उसमें से सार बूंद-भर ही निकलता है।"

मैंने उस दिन अनुभव किया अनुराधा बातूनी ही नहीं चालाक और बुद्धिमान भी है। मेरे मन का आकर्षण अनुराधा की ओर खिच गया। काजल के दुखी जीवन का उपाख्यान सुनकर एक ओर मन बोझिल था पर अनुराधा के निष्कलुष सौन्दर्य के आर-पार मुझे अकेलेपन के बियाबान में भटकते हुए एक स्थायी पड़ाव दिखाई दिया था। उस दिन मैंने ध्यान से उसे देखा। चाकलेट रंग की साटन-साड़ी में सुन्दर लग रही थी। तुरन्त नहाकर आई थी। खुली हुई केशराशि दोनों कन्धों के पीछे पीठ पर लहरा रही थी। वह काजल की 'पहिएदार कुर्सी को पीछे से धीरे-धीरे चलाती हुई बँगले की तरफ बढ़ रही थी। मैं उसके समानान्तर चल रहा था। कुछ देर के लिए लगा कि हम तीनों के पास शब्द नहीं सिर्फ प्रश्न हैं। बहुत सारे प्रश्न। मुझे जिस प्रश्न का उत्तर मिला था, उसी उत्तर की प्रतीक्षा काजल भी कर रही थी। मैंने पास ही गुलाब की क्यारियों में से दो लाल टटके गुलाब के फूल तोड़े। एक काजल को तथा दूसरा अनुराधा को देते हुए कहा—"तुम दोनों बहनों को एक पत्रकार की भेंट।"

काजल ने होठों पर मन्द मुस्कान लिए कटाक्ष किया—"एक प्रगतिवादी पत्रकार को फूलों से प्यार करते हुए पहली बार देख रही हूँ।"

मैंने कहा—"फूल और प्यार से ही आदमी सौन्दर्य-बोध और आत्म-तृप्ति पाता है। मैं भी भूखा-प्यासा अभावों में जीता हुआ एक व्यक्ति हूँ।"

अनुराधा मेरे चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाते हुए हँसते हुए बोली—"अमित बाबू, आप प्यासे और भूखे दोनों लगते हैं क्या ?"

हम तीनों हँस पड़े।

काजल और अनुराधा से विदा लेकर मैं उसी शाम कलकत्ता चला आया। फिर ऑफिस के कामों में उलझ गया। इस 'काली माँ' के कलकत्ता की विचित्रता है कि आदमी अपनी दिनचर्याओं में फँसकर समय के साथ भागता चला जाता है। व्यक्तिगत सन्दर्भ, सम्बन्ध. अतीत उसके पीछे घिसटते हुए पीछे छूट जाते हैं। आदमी आर्थिक मायाजाल में बँधा बस भागता रहता है। एक शाम घर लौटा तो अनुराधा का पत्र मिला। मुझे बनारस से आए पाँच सप्ताह हो गए। इस बीच मैं एक पत्र भी उन लोगों को न दे सका। यहाँ आकर काजल के पति मिस्टर अग्रवाल से अलीपुर जेल मिलने भी गया, परन्तु उस आदमी ने काजल का पत्र तो पढ़ लिया, मुझसे कोई बातचीत करने का मूड सँजो नहीं पाया। पत्र पढ़कर वे अन्दर से क्रुद्ध और आहत हो गए। जेल के अन्दर भी उनका भारी-भरकम शरीर और रौबीला व्यक्तित्व अपनी पहचान करा रहा था। वह आदमी घमण्डी और क्रूर लगा। मैं जेल से लौटकर घर आया तो सोचने लगा---काजल को पत्र लिखकर समाचार दे दूँ—तुम्हारे मोटे-माटे पति अत्यधिक तंदुरुस्त होकर जेल में बड़े आराम से हैं। पर दफ्तर के कामों में फँसकर भूल ही गया। मैंने यह भी सोचा कि मिस्टर अग्रवाल पर एक फीचर लिखूँ। परन्तु बहुत-सी बातों का पर्दाफाश होने पर काजल के पति का चरित्र उछलता और इससे काजल को और भी आघात लगना स्वाभाविक था। इसलिए इस विचार को मैंने त्याग दिया। फिर मैंने उस 'न्यू ब्यूटी सैलून' के बारे में पता लगाया। काफी पहले वह विक्रय हो गया और उसकी जगह अब 'शैली ब्यूटी पार्लर' के नाम पट्ट लगा है। 'न्यू एडवरटाइजिंग एजेन्सी' भी दो साल पहले बन्द हो गई और अचानक अनुराधा का पत्र पाकर सोच रहा था इतने दिन हो चुके, मुझे एक पत्र तो लिख ही देना चाहिए था। मैंने लिफाफा खोला।

पत्र पढ़ कर मेरे पाँवों तले से जमीन खिसकने लगी। आह, समय का

यह कैसा दण्ड-विधान है। काजल अब इस दुनिया में नहीं रही। मैंने दोबारा पत्र को पढ़ना शुरू किया। शुरू से अन्त तक कई बार पढ़ा—

बनारस

17 नवम्बर, 1982

प्रिय अमित बाबू,

आप तो कलकत्ता जाकर हमें एकदम से भूल गए। आपको दीदी ने बहुत याद किया। बीच में उनकी टाँग में घाव हो गया था। दोबारा आपरेशन कराना पड़ा। दीदी ने आपको पत्र लिखने नहीं दिया। कहती थीं—"अमित बाबू 'डिस्टर्ब' होंगे। बनारस आएँगे। परेशानी होगी। ठीक हो जाऊँगी तब लिखना। अस्पताल से दीदी जिस दिन घर आई थीं यानी आज से तीन दिन पहले अचानक रात में जीजा जी चोरी-छिपे घर आ गए। जेल से भागकर आए थे। दीदी से कह रहे थे—मुझसे शादी करना चाहते हैं। मुझे लेकर देश के बाहर 'हांगकांग' सवेरे की फ्लाइट से चले जाना चाहते हैं।

दीदी ने साफ मना कर दिया। इस बात पर काफी गाली-गलौज की उन्होंने। जबर्दस्ती मुझे लेकर भागना चाहते थे। दीदी उनके आगे हाथ जोड़ती रहीं। पाँव पड़ती रहीं। गिड़गिड़ाती रहीं। पर वे एक न माने। मुझे हाथ से पकड़कर नीचे ले जाने लगे। दीदी अपनी पहिएदार कुर्सी चलाकर उनके सामने आईं। पाँव पकड़कर मिन्नतें करने लगीं। गुस्से में आकर उन्होंने पाँवों से दीदी की कुर्सी को जोरों से धक्का मारा। कुर्सी पहले तल्ले से सीढ़ियों पर लुढ़कती हुई नीचे जा गिरीं और उसी के साथ दीदी। उनका सिर फट गया। रक्त का फव्वारा बह निकला। यह सब देखकर मैं आवेश में पागल हो उठी। जिस आदमी को मैं अब तक जीजा कहकर पुकार रही थी, सम्मान दे रही थीं, वही राक्षस निकला। दीदी को मार डाला। दीदी ने मरते वक्त मेरा मुँह छूते हुए अस्फुट स्वर में कहा था—अनू ! रो मत। अमित बाबू के साथ तुम···।

जीजा जी ने अब तक रुपए पैसे, सोना, जेवर जो कुछ तिजोरी में था, लेकर सूटकेस में रख लिया। मुझे जबरदस्ती पकड़ कर ले जाने लगे। मैं देख रही थी उन्हें दीदी के मरने का जरा भी दुःख नहीं। मैं दीदी को छोड़कर भला कैसे जाती ! दीदी ने मेरे लिए ही अपने प्राणों की बलि दे

दी थीं। वे मुझे पकड़ते कि इसके पहले ही मेज पर रखा पीतल का फूलदान फेंक कर मैंने मारा था। फूलदान उनके माथे पर लगा। वे मुझे पकड़ने के लिए ऊपर चढ़ने लगे। मैंने अपने कमरे में आकर उसे अन्दर से बन्द कर लिया, पर उन्होंने दरवाजा तोड़ दिया। इतनी देरी में ही मैं पिछला दरवाजा खोलकर बाहर निकल भागी। सीढ़ियों के पास रखे उनके सूटकेस में रखी पिस्तौल उठा ली। वे सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे तभी मैंने उन पर गोलियाँ चला दीं। उन्हें मारकर मेरी आत्मा को बहुत राहत मिली। सच, अमित बाबू ! दीदी की हत्या का बदला मैंने ले लिया···।

यह पत्र मैं आपको बनारस सेन्ट्रल जेल से लिख रही हूँ। शायद यह पत्र आप तक पहुँचे या नहीं और अब तक तो आप हमें भूल भी गए होंगे। काश ! आप समझ पाते, दीदी और मैंने आपको किस कदर चाहा है ! अच्छा ! आपको अधिक कष्ट न देकर क्षमा माँगती हूँ। कोई गलती हुई हो तो माफ कर देंगे इस अभागिन को।

इति।

आपकी

अनुराधा।

"काजल अब इस दुनिया में नहीं रही। उसने सारी जिन्दगी संघर्ष किया। अपने परिवार के लिए अपने को समाप्त कर दिया। माँ, बाप, बहन के लिए अपना शरीर, अपनी मर्यादा, अपना अस्तित्व, सब कुछ दाँव पर लगा दिया। निष्ठुर काल असमय उसे इस भोगवादी संसार से उठा ले गया। सामाजिक, आर्थिक, यान्त्रिक, महाजनी सभ्यता के जंगल में वह जीवन-भर भटकती रही। समय के महासमुद्र-तट पर भरने की कोशिश करती रही, एक कतरा सुख से आत्मसम्मान का रिक्त कलश।"

और मैं अखबारों में देश-दुनिया के समाचारों का ताना-बाना बुनता रहा। नये समाचार, नई घटनाएँ, नये संवाद की तलाश में दिमाग के घोड़े सरपट दौड़ाता रहा। धरती से अन्तरिक्ष तक। अमरीका, रूस, ईराक, ईरान, मध्य-पूर्व युद्ध, शान्ति, आजादी, मुक्ति, शान्ति, इम्पोर्टेड, विदेशी 'न्यूज प्रिन्ट' पर समाचारों के शतरंज खेलता रहा।

मैं उसी शाम कलकत्ता से चल पड़ा था बनारस के लिए। लग रहा था जैसे काजल मुझे बुला रही है—'अमित बाबू ! अनुराधा को आपको सौंप कर जा रही हूँ उसे बचाएंगे नहीं। वह बिलकुल निर्दोष लड़की है। निष्कलुष, निष्पाप। सवेरे के टटके फूल जैसी। आप उसका हाथ थाम लें तो मेरी आत्मा को शान्ति मिले। मैं समझूंगी कि इस जीवन में जो कुछ पाप मैंने किए थे। वे सभी आप और अनुराधा के पुनीत मिलन के संगम-जल से धुलकर पवित्र हो गये। एक सात्विक आनन्द और शान्ति से भर जाएगी मेरी आत्मा। आपके इस उपकार के लिए चिर-कृतज्ञ रहूँगी मैं। अगले जीवन में भी आपकी श्रद्धा करती रहूँगी।' मैं बनारस में पहुँचते ही सबसे पहले काजल के घर गया। वह बन्द पड़ा था। बाहर पुलिस के दो सिपाही पहरा दे रहे थे। वहाँ से लौटकर 'काली-बाड़ी' में सामान रखा। फिर अनमने मन से निकल पड़ा। रात भर की विश्रान्त यात्रा, काजल की असामयिक मृत्यु तथा अनुराधा के जेल जाने से मानसिक दबाव बढ़ता जा रहा था। अनुराधा से जेल में मिलने गया तो मुझे देखते ही रो पड़ी। पाँच दिनों में उसका फूल जैसा कोमल चेहरा बुझ गया था। 'लॉक अप' के सीकचों के बीच मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर सान्त्वना देते हुए कहा - "सब ठीक हो जाएगा। थोड़े दिन कष्ट सह लो। चिन्ता करने या घबराने की बात नहीं। मैं तुम्हें इस लोह कारागार से छुडाकर हृदय-कारागार का बन्दी बनाने आया हूँ।"

वह अपनी झुकी हुई सजल पलकें मेरे पावों पर रखकर रो पड़ी—"यह सब क्या हो गया ? मैं दीदी को बचा नहीं सकी।" सिसकियों के बीच वह कुछ भी अधिक बोलने में असमर्थ थी। उसे इस तरह टूटकर बिखरते देख गम्भीर वेदना से दिल भर गया। लगा, काजल यहीं कहीं मेरे पास खड़ी हम दोनों की ओर बड़ी-बड़ी सजल आँखों से ताक रही है। जैसे

कह रही है—"अमित बाबू ! अनुराधा निर्दोष है । उसे मैं आपको सौंपकर जा रही हूँ । उसकी रक्षा कीजिएगा, उसे अपना लीजिएगा ।" सीकचों के बीच मैंने अपना हाथ बढ़ाकर अनुराधा का हाथ थाम लिया ।

□□

## स्वदेश भारती

### प्रकाशित रचनाएँ

### कविता-संग्रह

इक्कीस सुबह और, आवाजों के कठघरे में, तपिस मिटती नहीं, दूसरा वामाचार, मन चाहता है अपनापन, भरे हाट के बीच 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'चौथा सप्तक' तथा कई अन्य विशिष्ट काव्य-सकलनों में कविताएँ संगृहीत ।

### उपन्यास

शवयात्रा (कई भाषाओं में अनूदित), औरतनामा, शहरयार, यातना-शिविर ।

### कहानी-संकलन

कथा नगर

### सम्पादित ग्रन्थ

साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य रचना और आलोचना ,
सातवें दशक की श्रेष्ठ कहानियाँ,
महानगर (कहानी-सकलन),
आज की भारतीय कविता (कई खण्डों में)
विभिन्न भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कविताओं के अंग्रेजी अनुवाद ।
समकालीन हिन्दी कविताएँ : 1984
समकालीन ओड़िया कविताएँ (हिन्दी अनुवाद)
जीवनानन्द दास की कविताएँ (हिन्दी अनुवाद)
सम्प्रति कलकत्ता से 'रूपाम्बरा' (हिन्दी तथा अंग्रेजी) का सम्पादन ।

पता—रूपाम्बरा
22बी, प्रतापादित्य रोड, कलकत्ता–700026

